अंक : १३९

जुलाई-सितंबर २०१७

कथाबिंब

कथाप्रधान त्रैमासिक पत्रिका

कहानियां

पुष्पा सक्सेना • अनुपम श्रीवास्तव • राकेश भ्रमर

जूनियर मंटो • गिरीश पंकज

आमने-सामने

गिरीश पंकज

सागर-सीपी

डॉ. मनोहर अभय

२० रुपये

साथ बढ़ें समृद्धी की ओर

स्वच्छ भारत
एक कदम स्वच्छता की ओर

पृथ्वी का अधिक पोषण
भारत की अधिक समृद्धि

छटें दशक में अपनी शुरुवात से ही आरसीएफ भारत की कृषि उत्पादकता को बढ़ानेवाली एक प्रमुख शक्ति रही है। हमारी कामयाबी की जड़ें हमारे विश्वास में हैं, हमारा विश्वास है कि कृषक समुदाय की अधिकारिता ही सम्मलित विकास की ओर अग्रेसर करती है। लम्बे समय से हम भारतीय किसानों के सच्चे और विश्वसनीय हमसफर रहे हैं। निरंतर कृषि के माध्यम से निरंतर आत्मनिर्भरता आज राष्ट्र की जरुरत है और हम गुणवत्तापूर्ण कृषि इनपुट और प्रभावी कृषि सेवा किसानों को प्रदान करके मिट्टी की उचित देखरेख के साथ खेतों की उच्च उत्पादकता सुनिश्चित कर रहे हैं।

हमारे प्रेरणादायी निष्पादन :

- देश के अग्रणीय उर्वरक निर्माता।
- पिछले पाँच दशकों से भारतीय किसानों को समर्पित सेवाएँ।
- उर्वरक क्षेत्र में पहली पाँच कंपनीयों में स्थान।
- 'उज्ज्वला' यूरिया, संयुक्त श्रेणी 'सुफला' (15:15:15 और 20:20:0) पानी में घुलनशील उर्वरक 'सुजला', जैविक उर्वरक 'बायोला' सूक्ष्म पोषक तत्वोंवाला 'माइक्रोला' जैसे कई उत्पाद।
- रासायनिक क्षेत्र में अग्रणी, 20 औद्योगिक रसायनों का उत्पादन।

भविष्य की राह :

- 1.27 मिलियन टन प्रति वर्ष यूरिया बनाने के लिए विस्तारित परियोजना।
- सीआइएल, गेल और एफसीआइएल के साथ मिलकर कोल गैसिफिकेशन के माध्यम से तालचर में उर्वरक संकुल स्थापित करना।
- मध्य पूर्वी संसाधन समृद्ध देशों में यूरिया के लिए संयुक्त उद्यम परियोजनाएँ स्थापित करना।
- रॉक फास्फेट और पोटाश के लिए लम्बी अवधि का ऑफटेक करार करना।
- निरंतर विकास पर सशक्त रुप से ध्यान केंद्रित करना।

राष्ट्रीय केमिकल्स एण्ड फर्टिलाइजर्स लिमिटेड

(भारत सरकार का उपक्रम)

"प्रियदर्शिनी", इस्टर्न एक्सप्रेस हाईवे, सायन, मुंबई - 400 022. | www.rcfltd.com

जुलाई-सितंबर २०१७
(१९७९ से प्रकाशित)

कथाबिंब

प्रधान संपादक
डॉ. माधव सक्सेना "अरविंद"

संपादिका
मंजुश्री

संपादन सहयोग
डॉ. राजम पिल्लै
जय प्रकाश त्रिपाठी
अशोक वशिष्ठ
अश्विनी कुमार मिश्र

संपादन-संचालन पूर्णतः
अवैतनिक तथा अव्यवसायिक

●सदस्यता शुल्क●
आजीवन : ७५० रु., **त्रैवार्षिक** : २०० रु.,
वार्षिक : ७५ रु.,
कृपया सदस्यता शुल्क
मनीऑर्डर, चैक द्वारा
केवल **"कथाबिंब"** के नाम ही भेजें.

●रचनाएं व शुल्क भेजने का पता●
ए-१० बसेरा, ऑफ दिन-क्वारी रोड,
देवनार, मुंबई-४०० ०८८.
मो.: ९८१९१६२६४८, ९८१९१६२९४९

e-mail : kathabimb@gmail.com
www.kathabimb.com

● **न्यूयॉर्क संपर्क** ●
नरेश मित्तल
(M) 845-304-2414
नमित सक्सेना
(M) 347-514-4222
● **शिकागो संपर्क** ●
तूलिका सक्सेना
(M) 224-875-0738

एक प्रति का मूल्य : २० रु.
कृपया नमूने की प्रति मंगाने हेतु
२० रु. के डाक टिकट अवश्य भेजें.
(सामान्य अंक : ४४-४८ पृष्ठ)

कहानियां

।। ७ ।। प्रेम दीवानी- पुष्पा सक्सेना
।।१५।। पांव बदलता सफ़र - अनुपम श्रीवास्तव
।।२१।। रेगिस्तान में बारिश - राकेश भ्रमर
।।२९।। पप्पू पाकिस्तानी - जूनियर मंटो
।।३३।। नायिका - गिरीश पंकज

लघुकथाएं

।।२७।। दर्पण / योगेंद्र शर्मा
।।३२।। इतिहास के खिलाफ़ / मार्टिन जॉन
।।३७।। जाल / कृष्ण मनु
।।४६।। गौ माता / नीता श्रीवास्तव

कविताएं / ग़ज़लें

।।२०।। ग़ज़ल / मो. शरीफ़ कुरेशी
।।२८।। गाएं (कविता) / डॉ. दिनेश श्रीवास्तव
।।४६।। रोबोट (कविता) / मधुदीप
।।५६।। ग़ज़ल / अशोक "अंजुम"

स्तंभ

।। २ ।। "कुछ कही, कुछ अनकही"
।। ४ ।। लेटर बॉक्स
।।३९।। "आमने-सामने" / गिरीश पंकज
।।४२।। "सागर-सीपी" / डॉ. मनोहर अभय
।।४७।। "औरतनामा" / डॉ. राजम पिल्लै
।।५१।। पुस्तक-समीक्षा

●**"कथाबिंब" अब फ़ेसबुक पर भी** ●
facebook.com/kathabimb
आवरण पर नामित रचनाकारों से निवेदन है कि
वे कृपया अपने नाम को "टैग" करें.

आवरण चित्र : एक मनोरम चित्र (अलास्का), ९ अगस्त २०१७
चित्र : नमित सक्सेना

"कथाबिंब" मुंबई की "संस्कृति संरक्षण संस्था" के सौजन्य से प्रकाशित होती है.

कुछ कही, कुछ अनकही

यह वर्ष का तीसरा अंक है. हमारी कोशिश रहती है कि तीन महीनों की अवधि समाप्त होते-होते अंक प्रकाशित होकर पाठकों तक पहुंच जाये. इंटरनेट ने पूरी प्रक्रिया को सुविधाजनक बना दिया है. आप दुनिया में कहीं भी रहें रचनाकार निरंतर आपके संपर्क में रह सकते हैं और आप उनके. इसके साथ ही प्रेस से भी लगातार आपका संवाद बना रह सकता है. इस वर्ष जुलाई के दूसरे सप्ताह में हम पति-पत्नी विदेश यात्रा पर निकल पड़े थे. पहले पांच दिन लंदन में गुज़ारे फिर अमेरिका पहुंचे. कुछ दिन शिकागो रहे और जुलाई के अंत में सियाटिल पहुंचे. यहां परिवार के अन्य सदस्य भी अलग-अलग शहरों से आकर इकट्ठे हुए और छः दिनों की यात्रा पर हम अलास्का पहुंचे. अलास्का अमेरिका का ही भाग है किंतु नैसर्गिक सौंदर्य में अप्रतिम! अंक के अंतिम पृष्ठ ५६ पर पाठक अलास्का की कुछ मनोरम झलकियां देख पायेंगे. सियाटिल प्रवास में मैं लेखिका श्रीमती पुष्पा सक्सेना से भेंट करना चाहता था किंतु हमारे ठहरने की जगह से उनका निवास काफ़ी दूर होने के कारण ऐसा संभव न हो सका. फ़ोन पर कई बार उनसे बात अवश्य हुई. अलास्का से हम लोग शिकागो आये और फिर अगस्त के तीसरे सप्ताह में स्वदेश वापस लौटे.

जैसा कि विदित ही है कि "कथाबिंब" संस्कृति संरक्षण संस्था के सौजन्य से प्रकाशित होती है. अन्य वर्षों की भांति इस बार भी, १० सितंबर को ५वीं से ७वीं के स्कूली बच्चों के लिए *"संस्कृत श्लोक वाचन प्रतियोगिता"* आयोजित की गयी. इस प्रतियोगिता में विभिन्न विद्यालयों के लगभग १००० छात्र भाग लेते हैं. अंतिम चरण में चयन के पश्चात क़रीब ४० छात्र पुरस्कृत किये जाते हैं. २४ सितंबर को ऑन-द-स्पॉट *"कविता-सृजन प्रतियोगिता"* का आयोजन भी संपन्न हुआ. इसमें दो वर्ग होते हैं : "क-वर्ग," ८वीं से १०वीं के छात्र व "ख-वर्ग," कनिष्ठ व महाविद्यालय के छात्र. ३० मिनट के समय में बच्चों को कविता लिखना होता है. कविता के विषय ठीक प्रतियोगिता के पहले ही बताये जाते हैं. लगभग १०० छात्रों ने इसमें भाग लिया. कहना न होगा कि दोनों ही कार्यक्रम बहुत सफल रहे. विशेषकर "कविता-सृजन" कार्यक्रम में बच्चों की भावप्रवणता व प्रस्तुतीकरण ने सभी का मन मोह लिया.

●

इस अंक की पहली कहानी *"प्रेम दीवानी"* की लेखिका हैं सियाटिल (अमेरिका) की प्रवासी लेखिका पुष्पा सक्सेना. शिकागो की फ़्लोरिस्ट की एक दुकान पर काम करने वाली मारिया को भारतीय विनायक अपने प्रेम जाल में फंसा लेता है. मंदिर में माला पहनाकर उससे शादी करके साथ रहने लगता है. लेकिन जब मारिया, जो अब पूरी तरह प्रेम दीवानी मीरा बन चुकी थी गर्भवती हो जाती है तो विनायक भागकर हिंदुस्तान चला जाता है. मीरा के पास विनायक का न फ़ोन नंबर है न ही उसका कोई पता-ठिकाना! अगली कहानी *"पांव बदलता सफ़र"* के लेखक हैं अनुपम श्रीवास्तव (निरुपम). एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी से होता हुआ जीवन का सफ़र कभी रुकता नहीं, सिर्फ़ पांव बदल जाते हैं. नायक का सफ़र गांव से शुरू हुआ था, कभी रुका नहीं. उसके पिता के पांव थके तो सफ़र स्वयं उसके पांव में आ गया और अब जब वह थक रहा है तो सफ़र लड़के के पांव में ज़ारी है. यह एक सुखद संयोग है कि अंक में दो कहानियां हमक़दम पत्रिकाओं के संपादकों की रचनाएं हैं. राकेश "भ्रमर" प्राची पत्रिका के संपादक हैं. *"रेगिस्तान में बारिश"* एक सामान्य भारतीय परिवार की कहानी है. परिवार की बड़ी लड़की मेहनत से पढ़-लिखकर नौकरी करती है, वही परिवार का भरण-पोषण करती है. भाई कुछ नहीं करता फिर भी मां का चहेता है. पिता बीमार हैं. लड़की की उम्र बढ़ती जाती है उसके जीवन में रेगिस्तान ही रेगिस्तान है, लेकिन एक दिन बारिश में वह भी भीग ही जाती है. अंक की अंतिम कहानी *"नायिका"* के लेखक भाई गिरीश "पंकज" सदभावना दर्पण पत्रिका के संपादक हैं. इस अंक के "आमने-सामने" में पाठक उनके आत्मकथ्य से भी दो-चार होंगे. युवा अवस्था में कई लोग एक स्वप्निल दुनिया में खोये रहते हैं. फ़िल्मी पर्दे पर दिखने वाली *"नायिका"* को मन में बसा लेते हैं. इस मृग-मरीचिका से बाहर आना आसान नहीं होता. अंक की एक और कहानी है *"पप्पू पाकिस्तानी."* जूनियर मिंटो एक नये लेखक हैं. इन्होंने एकदम अछूते कथ्य को उठाया है. हिंदुस्तान, पाकिस्तान के बीच होने वाला क्रिकेट मैच कैसे भावनाओं को उद्वेलित करता है. यहां तक कि किसी के लिए ज़िंदगी-मौत का सबब बन जाता है?

●

देश एक विचित्र दौर से गुज़र रहा है. आम आदमी आज पूरी तरह दिगभ्रमित है. सरकार प्रतिदिन नयी योजनाओं की घोषणाएं करती जा रही है. लेकिन ज़मीन पर कहीं कोई बदलाव दिखाई नहीं देता. पूरा इलेक्ट्रॉनिक मीडिया दो धड़ों में बंट गया है. अधिकांश चैनलों के रिपोर्टर प्रधानमंत्री और उनके मंत्रियों के पीछे साये की तरह लगे रहते हैं. फ़ेक न्यूज़ और पेड न्यूज़ के इस दौर में सही और प्रामाणिक ख़बर पता कर पाना ऐसा ही है जैसे भूसे के ढ़ेर में से सुई खोजना. किसी

एक चैनल को कोई लीड मिलती है तो तुरंत दूसरी सभी चैनलें "ब्रेकिंग न्यूज़" शुरू कर देती हैं. मुझे समझ नहीं आता कि हर छोटी-बड़ी ख़बर "ब्रेकिंग न्यूज़" कैसे हो सकती है और हर चैनल "नंबर-वन" कैसे हो सकती है? टी वी सीरियलों को देखना हमने काफ़ी समय पहले छोड़ दिया था. अब न्यूज़ चैनलों से भी मोहभंग होने लगा है. सारी ख़बरों को मोटे तौर पर तीन-चार कैटेगरी में बांटा जा सकता है. दिल्ली, देश की राजधानी के साथ-साथ जैसे अपराध की राजधानी भी बन गयी है. बलात्कार के लिए उम्र की कोई भी सीमा नहीं है, ज़रा सी बात में हत्याएं, चोरी-डकैतियां. सड़क दुर्घटनाएं भी आम बात हो गयी है. चैनलें २५-५०-१००-२०० ख़बरें इतनी तेज़ी से परोसती हैं कि आपको रिएक्ट होने का समय ही नहीं मिल पाता. लगभग एक महीने से बाबा राम रहीम चर्चा में हैं. राम रहीम की चहेती पुत्री ग़ायब है. एक ही फूटेज़ तमाम चैनलें "एक्सक्लूसिव" करके दिखा रही हैं. सिरसा में सालों-साल इतने विशाल अभेद्य किले के रूप में जब "डेरा" आकार ले रहा था तब हमारे ख़बरनवीस कहां थे? भक्त माता-पिता अपनी लड़कियां बाबा की सेवा के लिए क्यों और किस लिए छोड़ जाते थे. "भगवान के दूत" ने तीन-तीन चलचित्र बनाये, इसके लिए पैसा कहां से आता था? वह कौन-सी प्रक्रिया है जिसके तहत समाज में ऐसे बाबाओं का प्रादुर्भाव होता है. आसाराम हों, रामपाल, रामवृक्ष, चंद्रास्वामी या धीरेंद्र ब्रह्मचारी हों, (यहां और भी नाम गिनाये जा सकते हैं) इनका जादू हम सब पर कैसे चल जाता है. उत्तर भारत में ट्रेन से यात्रा करते समय बाबा उस्मानी के विज्ञापन दीवारों पर लगातार दिखते हैं. ऐसा कौन-सा विभाग है जो इस पर कार्यवाही कर सकता है ? दिल्ली के रायन स्कूल में हुई अफ़सोसजनक दुर्घटना को इतना तूल क्यों दिया जा रहा है? सोशल मीडिया पर आप ग़लत-सलत कुछ भी अपलोड कर दीजिए. विडियो किस देश या समय का है, जब तक तहक़ीकात होगी तीर तो अपना काम कर चुका होगा. इधर युवाओं में सेल्फ़ी लेने का क्रेज़ बढ़ता ही जा रहा है. बड़े-बड़े शहरों में आकर्षण केंद्र के रूप में कई जगह "सेल्फ़ी-पॉइंट" बना दिये गये हैं. जोख़िम भरे स्थानों पर, जान पर खेलकर भी सेल्फ़ी लेने के चक्कर में रोज़ कितने युवा काल-कवलित होते हैं. इस पर कैसे रोक लगे? कुछ दिन पहले "पोकेमॉन-गो" नामक गेम मोबाइल पर डॉउनलोड करके बच्चे खेलने में जुट जाते थे. कई युवा इसमें दुर्घटनाग्रस्त हुए. आजकल "ब्लू-व्हेल चैलेंज़" गेम में फंस कर कितने युवा अपनी जान गंवा रहे हैं. कुछ ऐसे बच्चे जो किसी कारण से परिवार और समाज से कट जाते हैं, इंटरनेट पर रास्ता तलाशते-तलाशते आत्महत्या के इस खेल को खेलना शुरू कर देते हैं. सुबह ४.२० मिनट पर उठना होता है. ५० दिनों के इस खेल में रोज़ एक "टास्क" दिया जाता है जिसे ज़रूर पूरा करना होता. पचासवें दिन हालत ऐसी हो जाती है कि व्यक्ति अपने हाथ पर चाकू से एक मछली ("व्हेल") का निशान बनाता है और कहीं से कूदकर आत्महत्या कर लेता है. आज माता-पिता अपनी आपाधापी में इतने उलझे हैं कि वे अपना दायित्व भूल गये हैं, बच्चे अलग-थलग पड़ जाते हैं. यह सब उसी का परिणाम है. "वाट्स-एप" विचारों व वीडियो के आदान-प्रदान का सस्ता और सुलभ माध्यम है. आप मुफ़्त में फ़ोन भी कर सकते हैं. दिन के शुरू होने से पहले सुप्रभात के संदेश आने लगते हैं. ऐसे संदेशों से बचना चाहिए जिनके साथ यह लिखा होता है कि "इसे अधिक से अधिक लोगों से शेयर करें." कोई आपको इस्तेमाल तो करना नहीं चाहता!

२१वीं सदी के वर्तमान दौर में पिछली सदी की अपेक्षा हम सबके सामने अधिक चुनौतियां हैं. नित नयी विसंगतियों से हमारा साबका पड़ रहा है. बुद्धिजीवियों और साहित्यकारों को अतिरिक्त सतर्क रहने की आवश्यकता है. अपनी रूढ़िवादी सोच को तजकर लेखन के माध्यम से हमें नये ख़तरों से जनसामान्य को आगाह करना होगा.

●

बिहार में नीतिश के पाला बदलने से विपक्ष की एकजुटता की रीढ़ ही टूट गयी. लालू परिवार ज़्यादा दिन सत्ता सुख नहीं भोग सका और अब सभी सदस्य अदालतों के चक्कर लगा रहे हैं. महागठबंधन धाराशाही पड़ा है. कॉन्ग्रेस के हाथ से एक और राज्य चला गया. अब देखना यह है तमिल नाडु में क्या होता है? कुछ ही दिनों में गुजरात, हिमाचल प्रदेश और कर्नाटक में चुनाव होने वाले हैं. फिर रैलियों का दौर शुरू हो जायेगा. हमारे युवराज को लगा कि अमेरिका में इंटरव्यू दे कर ही कुछ बात बन जाये, लेकिन यह कहकर कि भारत में परिवादवाद तो हर पार्टी और औद्योगिक घराने में है, अपने पैर पर कुल्हाड़ी मार ली. जाने कबसे सुनते आ रहे हैं कि युवराज अब शीघ्र ही कॉन्ग्रेस की बागडोर संभालने वाले हैं. पता नहीं किस मुहुर्त का इंतज़ार है?

अंत में, आये दिन सीमा पर हमारे जवान शहीद होते हैं और इसी तरह, यदाकदा ही सही नक्सली उग्रवाद से निपटने में भी पुलिस के सिपाही शहीद होते हैं. यह सही है कि हम तिरंगे में लपेटकर उनका यथोचित सम्मान करते हैं. इसके साथ ही परिवार को मिलने वाली मुआवज़े की राशि को बढ़ा कर कम से कम एक करोड़ करना सरकार के लिए मुश्किल नहीं होना चाहिए! यह समय की मांग है.

अरविंद

लेटर-बॉक्स

▶▶ 'कथाबिंब' का अप्रैल-जून २०१७ अंक बहुत कुछ सोचने-समझने को बाध्य करता है. हालांकि 'कथाबिंब' के सभी अंक दिल व दिमाग़ के भीतर के वलवलों को उजागर करते हैं, लेकिन इस अंक ने अंधेरे से उजाले की ओर जाने का मार्ग प्रशस्त करने की कोशिश की है.

अरविंद जी ने 'कुछ कही, कुछ अनकही' में कहानियां छापने से पूर्व लेखकों द्वारा उन्हें भेजने की नयी तकनीकी की जानकारियों से अवगत कराया है. रचना ई-मेल से भेजने का काम सुविधाजनक तो हो गया है, पर भारत के हर शहर से भेजना संभव नहीं है, क्योंकि वह बेहद महंगा कार्य है और हर जगह से भेज पाना भी बेरोज़गार लेखकों के लिए संभव नहीं है. केवल कुछ ऐसे लेखक ही इसका उपयोग कर पाते हैं जो किसी सरकारी तथा अशासकीय संस्थानों में कार्यरत हैं. भाजपा के तीन साल पूरे होने पर आपने इलेक्ट्रॉनिक मीडिया की पोल खोल कर ईमानदार, निर्भीक व सच्चे पत्रकारों को रास्ता ही दिखाया है.

'रात भर बर्फ़ गिरती रही' संतोष श्रीवास्तव की कहानी दिल को छू लेने वाली नहीं लगी. दरअसल, समाज का एक बड़ा तबका आज ज़िंदगी की विषमताओं के 'ब्लैक होल' में फंसा कराह रहा है और उन्हें उसमें से निकालने वाला कोई नहीं है. हिमालय की कंदराओं में अनेकों दर्द भरी कहानियां छुपी हुई हैं लेकिन संतोष ने पर्वतारोहियों की कहानी को चुना जो विषय में अलग ज़रूर है लेकिन कहानी का अंत एकदम बकवास और अर्थहीन एवं औचित्यहीन बन गया है. महज शब्दों के मकड़जाल और अच्छे-अच्छे पैराग्राफ़ में पिरोकर उसे लिखने से कोई कहानी सार्थक नहीं होती. कहानी का मूल भाव उभरना चाहिए. अलबत्ता, डॉ. पूरन सिंह की कहानी 'सरवन' आम आदमी के जीवन में झांकती हुई दिखाई दी. 'सरवन' की बहनें ख़ासकर जलेसर वाली बहन और बड़े भाई के बीच का द्वंद्व अपनी औरत एवं उसकी विलासता, मां-बाप की मृत्यु एवं माया चाची की उपजी सहानुभूति की सच्चाई की वकालत करती है. इस कहानी को पहली कहानी बनाकर प्रस्तुत किया जा सकता था, लेकिन संपादक का निर्णय शिरोधार्य है.

डॉ. लखन लाल पाल की कहानी 'महाठगनी माया' नोटबंदी के बाद जनता को दिखाये गये झूठे सब्ज़बाग की कहानी है. लेकिन इसे जिस रूप में प्रस्तुत किया गया है वह 'कथ्य' काफ़ी कमज़ोर बन पड़ा है. गोवर्धन यादव की कहानी 'भीतर का आदमी' कथाबिंब जैसी उच्चस्तरीय सोच व समझ रखने वाली पत्रिका के लिए ठीक नहीं है. 'भीतर का आदमी' केवल हैवानियत के नंगे सच अथवा एक पत्नी से मिलने को तरसते युवा की कहानी है. पत्नी अपने पति को बताये बिना ऐसे चक्रव्यूह में फंस जाती है जो उसका ख़ुद का बनाया हुआ है. यह सच प्रतीत नहीं होता. यह दिल के भीतर की तहों को और अधिक बिस्तर पर उकेरती है मानो कोई रात की ख़ामोश चादरों को इसलिए तन पर ओढ़ता है कि जिस्म गर्म रहे.

वंदना शुक्ला की कहानी 'सहयात्री' तीसरी उम्र के लोगों की एक बेहतरीन कहानी है जो अपने बहू-बेटे से उपेक्षित होकर किसी का सहारा, सहानुभूति और अपनापन ढूंढ़ते हैं. अलबत्ता, 'आमने-सामने' में उनका जीवन वृत्तांत उतना असरकारक नहीं लगता. लगता है कि साधन संपन्न अथवा अमीर लोग विसंगतियों, विरोधाभासों को उजागर करती हुई मन को छू लेने वाली चीज़ें नहीं लिख सकते, क्योंकि उनका कभी इनसे वास्ता ही नहीं पड़ा, ग़रीब की झोपड़ी में झांकने का उन्हें अवसर ही नहीं मिला और न ही उनका उनसे कोई सरोकार रहा है.

अंक की लघुकथाएं लगभग ठीक-ठाक हैं, गीत-ग़ज़ल ने भी प्रभावित किया. राजन पिल्लै की 'औरतनामा' में वर्ज़ीनिया वुल्फ के बारे में यह जानकर कि उन्होंने आत्महत्या की थी मन को दु:ख हुआ. लेकिन उनका लेखन सदा अमर रहेगा. आवरण पृष्ठ पर आपने मसूरी के 'कैम्पटी फॉल' का चित्र प्रकाशित कर स्वर्गिक आनंद की अनुभूति करा दी है. अत: कोटिश: बधाई. अंक बेहद लाजवाब, सराहनीय, पठनीय एवं संग्रहणीय बन पड़ा है.

– विक्रम जनबंधु
संपादक, प्रेस पुलिस लहर, क्वार्टर-१७/ए,
सड़क-एवेन्यु बी, सेक्टर-१,
भिलाईनगर (छ. ग.) -४९०००१

▶▶ 'कथाबिंब' का नया अंक (१३८) मिला. कथा पत्रिका का नियमित समयानुसार निकलना हम कथा-लेखकों के लिए प्रसन्नता का विषय है. वह भी तब, जबकि किसी सेवाश्रय से हटकर अपने साश्रय से पत्रिका निकलती हो. अपने ज़माने में 'कहानी' एकमात्र पत्रिका थी, जिसका आश्रय हम कथाकारों ने लिया था. यह नियमित और निर्धारित समय पर हम सबों को मिलती थी. श्रीपतराय इसके लिए बधाई के पात्र थे. आपका बहुरंगी संपादकीय भी वैचारिक स्तर पर सोचने को बाध्य करता है. मेरे विचार से देश की दुर्दशा, अवलेहना पर ही बात होनी चाहिए. किसी नेता पर नहीं. 'अच्छे दिन' के बरक्स जो घटनाएं आज घट रही हैं, वे जनता के लिए अनुकूल नहीं हैं.

साधारण जन आज 'रामराज्य' की कल्पना और सपने में मशगूल हर पड़ाव पर ठगा जा रहा है.

प्रेम-भाईचारा, असहिष्णुता ये दोनों ही हम एक साथ निबाह नहीं सकते. लोग किधर जायें? अभी जो बंटवारे की राजनीति चल रही है, वह सर्वनाश का परिचायक है. आप भी राजनीतिक चोंचलेबाज़ी से बचें.

संपादकीय छोटा हो मगर साहित्यिक उदगार और उत्कर्ष से भरा हो! कहानी पर अधिक बातचीत हो तो नये कथाकारों को बल मिलेगा.

- *सिद्धेश,*
१/१७, आदर्श पल्ली, फ़्लैट १ बी,
रिजेंट एस्टेट, कोलकाता-७०००९२.

▶▶ 'कथाबिंब'के अंक बराबर मिल रहे हैं. इसी क्रम में अप्रैल-जून का १३८वां अंक भी प्राप्त हुआ है. अंक की, सभी कहानियां पत्रिका की प्रतिष्ठा के अनुरूप हैं. 'सागर सीपी' के अंतर्गत विज्ञानव्रतजी का यह कथन आप्तवाक्य की तरह है — 'सर्जन एक दैवीय प्रक्रिया है... यह श्रम से प्राप्त नहीं किया जा सकता है. ... सृजन आराधना है, आराध्य है.' लगता है इसे दीवार पर लिखकर टांग लूं. ... ग़ज़ल की बात चली है तो पत्र स्तंभ में आदरणीय चंद्रसेन विराट का नाम पढ़कर एक वाकया याद आ गया. 'समांतर' के किसी अंक में 'विराट' जी की एक ग़ज़ल छपी थी. उसकी एक अर्द्धतली अब तक याद है —

ऐ विमल! दीपक बुझा दे, सो गयी क्या !
शाल गुड्डू को उढ़ा दे, सो गयी क्या !!

इसी अंक में आचार्य जानकी वल्लभ शास्त्री की ग़ज़ल भी छपी थी. उन्हीं के निवास पर शाम की बैठकी चल रही थी. अंक की ग़ज़लों पर चर्चा हो रही थी. चर्चा के केंद्र में विराटजी ही थे. किसी ने कहा — आख़िर इस ग़ज़ल में है क्या? ऐसी भी क्या ग़ज़ल होती है. आचार्य शास्त्री भी सहमत थे. सर्वत्र चुप्पी थी, जिसे मैंने ही तोड़ी — 'साहित्य में जिन नौ रसों की कल्पना की गयी है उनमें एक और रस होना चाहिए — दांपत्य रस! इस ग़ज़ल में सकीया प्रेम की जितनी गहन पारिवारिकता है और उसके अंदर दांपत्य-रस की जो अंत: सलिला प्रवाहित है, वह अन्यत्र दुर्लभ है. दरअसल नयी कविता के तर्ज पर आज की तथाकथित नयी ग़ज़लें लिखी जा रही हैं जिनमें मौलिकता और भोगा हुआ सत्य नहीं है. वहीं 'विराट' जी की यह ग़ज़ल एकरसता तोड़ती है. एक बिल्कुल अछूता विषय है यह – ऐसे बिंब कोई सधा हुआ ग़ज़लगो ही गढ़ सकता है.' मेरी टिप्पणी पर स्वयं आचार्य भी चुप रह गये. कवि हूं, ऐसे ही अछूते और मौलिक बिंबों की खोज में रहता हूं. कथाप्रधान होते भी इस पत्रिका के सभी बिंब मनोहर हों, यह मेरी कामना है.

– उदय शंकर सिंह 'उदय'
गीतांबरा, सहबाजपुर (दुर्गास्थान), उमानगर,
मुज़फ्फरपुर, बिहार-८४२००४.

▶▶ 'कथाबिंब' का अप्रैल-जून का अंक मिला. 'कथाबिंब' की कहानियां पढ़ने का मज़ा ही कुछ और है. कहानियां पढ़ना मेरा पहला शौक़ जो है. मैं भोजन किये बग़ैर रह सकता हूं पर कहानी पढ़े बग़ैर नहीं.

इस बार मैंने सबसे अंतिम कहानी पहले पढ़ी. प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका. कैसे आजकल की बहुएं अपनी सास को सहन नहीं करतीं और ऐन-केन-प्रकारेण

घर से बाहर फुटाने की योजना को अंजाम देती रहती हैं. सास जो कभी घर से बाहर नहीं निकली और जो किसी तीरथ जाने से पहले अपने घर में पोते-पोतियों के संग रहना ज़्यादा पसंद करती है, उसे ज़बरदस्ती बहू-बेटे ने तीरथ भेज दिया. उसके पास धागा बंधा चश्मा है... उसे ठीक से दिखाई भी नहीं देता है.

उसकी यह हालत सहयात्री बुज़ुर्ग मास्टरजी से नहीं देखी जाती. वे अपने गंतव्य से उतरने के पहले अपना चश्मा बूढ़ी माई को दे जाते हैं. वह पहले तो अपने सहयात्री से एक दूरी बनाकर रहती है. बाद में ऐसे सहृदय सहयात्री का चले जाना उसे भीतर तक आहत कर जाता है. मुसीबत में अक्सर ऐसा होता है. बस में 'चिकनी चमेली' और 'बीड़ी जलई ले' जैसे फूहड़ गाने संस्कारों की धज्जियां उड़ाने के लिए यथेष्ट हैं. कहानीकार वंदना शुक्ला ने कई जगह संस्कार विहीनता पर चोट की है. डॉ. पूरनसिंह की लंबी कहानी 'सरवन' पढ़ी. दरअसल इसका नाम 'श्रवण कुमार' होना चाहिए था. कहानीकार लंबी कहानी लिखने में सिद्धहस्त है. मैंने अपने संपादित कहानी संकलन 'घर आंगन और गिरगिटान' में उनकी लंबी कहानी 'हां मैं कायर हूं' छापी थी. प्रस्तुत कहानी नयी पीढ़ी को निर्देश देकर आद्योपांत लोक बानी में एक रिदम पर चलती है और 'सरवन' की जगह श्रवण कुमार बनने के लिए प्रेरित करती है.

'रातभर बर्फ़ गिरती रही' — एक संवेदनात्मक कहानी है. बर्फ़ से भरे-भरे वातावरण का हू-ब-हू चित्रण कर नायक की मौत बर्फ़ की घाटियों में होने का कहानीकार ने बड़ा सजीव चित्रण किया. धर्मपत्नी पर विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा... ऐसे में ये पहाड़ उसे सुखानुभूति नहीं दे पाते. वह सदमे में जा पहुंचती है और उससे उबरना उसे किसी तरह संभव प्रतीत नहीं होता. 'महाठगनी माया'- डॉ. लखनलाल पाल की नोटबंदी पर यह पहली कहानी पढ़ने में आयी. समसामयिक कहानी का स्वागत किया जाना चाहिए. वह इतना और जोड़ देते कि किसी के नोट धरे के धरे रह गये और किसी के एकॉउंट में मुफ़्त के लाखों रुपये आ गये.

पुन: 'आमने-सामने' में वंदनाजी का स्वागत है. उनकी क़लम धारदार है. सागर-सीपी में विज्ञानव्रत से श्रीमती मधुप्रसाद की बातचीत धन्य कर देती है. 'औरतनामा' ज़रूर पढ़ें, यह मेरा अनुरोध समझें. लघुकथाएं/कविताएं अपनी-अपनी जगह उपयुक्त हैं. अशोक अंजुम की ग़ज़ल आख़िरी में है पढ़ना मत भूल जाइएगा.

'कथाबिंब' सन १९७९ से प्रकाशित है, ३८वें वर्ष में चल रही है. हर आगत अंक पिछले अंक से बेहतर होता है. पत्रिका की यही विशेषता उसे शतायु करेगी, ऐसा विश्वास है. प्रफुल्लचित्र मन से संपादकीय टीम को एक बड़ी सी बधाई. कहानी पीढ़ियों का दस्तावेज़ है. उसे संभालकर रखना हम सब कहानीकारों की ज़िम्मेवारी है. जब-तब कहानी के साथ भेदभाव हुआ है पर अब सब कुछ पटरी पर चल रहा है. मैंने खुले में बरगद के पेड़ के नीचे पार्क में कहानी पाठ की शुरुआत की है. पांच कड़ियां हुई हैं. इसकी रिपोर्टिंग एक सुविख्यात पत्रिका 'प्राची' मासिक कर रही है.

– डॉ. कुंवर प्रेमिल

संपादक, प्रतिनिधि लघुकथाएं/वार्षिकी,
जबलपुर (म. प्र.) -४८२००२.

▸▸ 'कथाबिंब' का अप्रैल-जून २०१७ अंक प्राप्त हुआ. आवरण पर कैम्पटी फॉल के विहंगम चित्र से लेकर अंतिम पृष्ठ तक, मात्र साठ पृष्ठों में, इतनी सामग्री भरी पड़ी है, अदभुत!

हर कहानी अपने-अपने रंग-रूप में पठनीय और रोचक है. आपका पृष्ठ 'कुछ कही, कुछ अनकही' वर्तमान समय की दशा को सटीकता से दर्शा रहा है. भारत के नागरिक होने के नाते हम सभी को इस पर चिंतन-मनन करना आवश्यक है. 'सागर-सीपी' में आदरणीय विज्ञानव्रत के बारे में बहुत कुछ मालूम हुआ, अच्छा लगा.

पूरी पत्रिका अत्यंत पठनीय और प्रभावी बन पड़ी है. इन सब पर शीर्ष पर है सुश्री वंदना शुक्ला की कहानी 'सहयात्री' कहानी तरतीब से पात्रों के मनोविज्ञान की पड़ताल–सी करती हुई पाठकों के मनों को छू गयी. बहुत सुंदर रचना है. वंदनाजी का 'आमने-सामने' में आत्मकथ्य भी अत्यंत रोचक है. लेखिका को बधाई व शुभकामनाएं.

– मंगला रामचंद्रन

६०८-आई ब्लॉक, मेरीगोल्ड,
ओशन पार्क, निपानिया,
इंदौर (म. प्र.)-४५२०१०.

प्रेम दीवानी

डॉ. पुष्पा सक्सेना

'मैडम, आपको कॉन्फ्रेंस में ले जाने के लिए कैब आ गयी है.'

'ठीक है, मैं आ रही हूं.' मेज़ से अपना पर्स उठा नीता जी लिफ़्ट से नीचे आ गयीं.

अमरीका के शिकागो नगर में आयोजित होने वाली अंतरराष्ट्रीय कॉन्फ्रेंस में सम्मिलित होने के लिए उसकी कंपनी ने उन्हें भेजा था. फ़ाइनेंस डाइरेक्टर नीता अपनी मेधा और दक्षता के कारण कंपनी के चेयरमैन की फ़ेवरिट थी. उसके सुझाव बहुत महत्वपूर्ण माने जाते थे.

ड्राइविंग सीट से उतरी एक सुंदर युवती ने तत्परता से नीता के लिए कैब के पीछे वाला डोर खोल कर मीठी आवाज़ में 'नमस्ते' कह कर नीता को चौंका दिया. डोर बंद कर ड्राइविंग सीट पर बैठ कर युवती ने टैक्सी स्टार्ट की थी. सड़क पर दौड़ती टैक्सी में कुछ देर के मौन के बाद नीता का विस्मय पूछ बैठा —

'आपसे नमस्ते सुन कर बहुत अच्छा लगा. क्या आप हिंदी के कुछ और शब्द जानती हैं?'

'कुछ शब्द नहीं, अच्छी हिंदी जानती हूं. दो साल तक उसने हिंदी लिखना, पढ़ना और बोलना सब सिखाया था. उसके फादर जिन्हें वह अक्का कहता था, हिंदी और संस्कृत के विद्वान हैं. उनसे मिलाने के पहले मुझे हिंदी आना ज़रूरी समझता था.' आवाज़ में कुछ गर्व और उदासी का मिश्रण था.

'आप किसकी बात कर रही हैं, क्या आपका कोई इंडियन मित्र था?'

'विनायक मेरा पति, मेरा मित्र, मेरा सब कुछ था. मैं उसे विनी पुकारती थी.

'मेरा डेस्टिनेशन बीस मील दूर है, समय बिताने के लिए अगर ठीक समझो तो जानना चाहती हूं, आपका उसके साथ परिचय कैसे हुआ, प्रेम की पहल किसने की थी?' नीता जी की उत्सुकता जाग उठी.

नीता जी ने सोचा, विदेश जाने वाले भारतीय युवकों की गोरी चमड़ी कमज़ोरी होती है, शायद इसीलिए इस युवती का किसी के साथ प्यार और विवाह हुआ होगा. क्या अब भी दोनों साथ हैं, पर उसके लिए वह 'था' कह रही है शायद अब दोनों अलग हो गये हैं, वैसे इस देश के लिए यह तो सामान्य बात है.

'आप भारतीय हैं, आपके साथ अपनी कहानी शेयर करने में ख़ुशी होगी. अभी पहुंचने में समय लगेगा, इस लिए अपनी कहानी बताती हूं.' कुछ देर मौन के बाद उसने कहना शुरू किया —

'उन दिनों मैं बॉब की फ़्लोरिस्ट शॉप में काम करती थी. रंग-बिरंगे फूलों के साथ वक़्त बिताना अच्छा लगता था. मेरे साथ एक हंसमुख पाकिस्तानी लड़का अहमद भी काम करता था. वृद्ध बॉब हम दोनों पर पूरी ज़िम्मेदारी छोड़ कर निश्चिंत रहते. अचानक उस दिन एक सफ़ेद कार से उतरा एक हैंडसम हिंदुस्तानी युवक शॉप में आया था.'

'गुड मॉर्निंग सर, आपको क्या चाहिए?' हल्की मुस्कान के साथ उससे पूछा था.

'अपने फ्रेंड की शादी में एक अच्छा बुके ले जाना चाहता हूं.' मुझ पर गहरी नज़र डाल कर उसने कहा था.

'आप सेलेक्ट कर लीजिए, हमारे पास आपके फ्रेंड के लिए बहुत ख़ूबसूरत बुके हैं.'

'वो तो देख रहा हूं. वैसे आपकी ड्रेस पर जो पिंक

और परपल फूल बने हैं, मुझे इन्हीं दोनों रंगों के फूलों का बुके बना दीजिए, क्या ये पॉसिबिल होगा?' चेहरे पर शरारती मुस्कान थी.

'मारिया ये तुझ पर लाइन मार रहा है.' अहमद ने धीमे से कहा.

'अगर आपका हमारे लिए ये चैलेंज़ है तो बस पांच मिनट का टाइम दीजिए.'

मारिया ने तत्परता से अधखिली गुलाबी गुलाब की कलियों के साथ जामुनी आर्किड्स मिला कर उन्हें हरी पत्तियों से सजा कर एक सुंदर बुके तैयार कर दिया. बीच में रजनीगंधा की दो-तीन अधखिली कलियों ने बुके का सौंदर्य बढ़ा दिया.

'लीजिए, पांच मिनट में आपका बुके तैयार है., उम्मीद है ये आपके फ्रेंड को पसंद आयेगा.' युवक को बुके देती मारिया ने हंस कर कहा.

'थैंक्स, आप सचमुच कलाकार हैं. अब तो आपको ऐसे ही चैलेंज़ देने में मज़ा आयेगा.'

'मारिया को चैलेंज़ में हराना आसान नहीं है, बशर्ते आप किसी ऐसे फूल का बुके चाहें जो हमारे पास ना हो. वैसे तो मारिया सिर्फ़ पत्तियों तक का बुके बना सकती है.' अहमद ने मारिया की तारीफ़ में कहा.

'अगर यह बात सच है तो दो दिन बाद मुझे सिर्फ़ पत्तियों से बना ऐसा बुके चाहिए जो ख़ूबसूरती में फूलों वाले गुलदस्ते से कम ना हो. चैलेंज़ जीतने पर आपकी शॉप के सबसे महंगे बुके के पैसे दूंगा.'

'आपका नाम जान सकता हूं, जनाब?' अहमद ने हिंदी में पूछा.

'विनायक, ये नाम मेरे अक्का यानी मेरे पापा ने दिया है. तुम लोग भी मुझे सर या मिस्टर ना कह कर सिर्फ़ विनी पुकारो तो अच्छा लगेगा.' उसके चेहरे पर ख़ुशी और हलके से अभिमान की झलक थी.

'दो दिन बाद आपका इंतज़ार रहेगा, विनी, चैलेंज़ भूल मत जाइएगा.' अहमद ने याद दिलाया.

'मुझे भी दो दिन याद रहेंगे. ओके बाय.' मुस्कुराता विनी बुके ले कर चला गया.

'अहमद, यह क्या पागलपन है, तारीफ़ में सच्चाई होनी चाहिए, भला पत्तियों से बुके बनाया जा सकता है?' मारिया ने नाराज़गी जतायी.

'कथाबिंब' की हितैषी एवं नियमित कथाकार

'मुझे पूरा यक़ीन है, हमारी मारिया चैलेंज़ जीतेगी. आजकल फ़ाल का सीज़न है, ज़रा चारों तरफ़ नज़र डालो, पेड़ों की पत्तियां इस मौसम में कितने रंग बदल रही हैं, पीली, लाल, नारंगी, कत्थई पत्तियां क्या ख़ूबसूरती में फूलों से कम हैं? ये नज़ारा कितना ब्यूटीफुल है, मारिया.' अहमद ने सच कहा था. फ़ाल-सीजन में पेड़ों की पत्तियों के बदलते खूबसूरत रंग देखना एक दर्शनीय नज़ारा होता है.

'ये बात तो सच है, अब तुमने चैलेंज़ ले ही लिया है तो कोशिश ज़रूर करूंगी. सवेरे जल्दी उठ कर रंग-बिरंगी पत्तियां इकट्ठी करनी होंगी. तुम्हें भी हेल्प करनी होगी, अहमद.'

'श्योर, मारिया. आख़िर पत्तियों के बुके का आइडिया मेरा ही था, जीतने पर आधे पैसे मैं लूंगा.' अहमद ने मज़ाक किया.

दो दिन बाद एक टोकरी में ढेर सारी रंग-बिरंगी पत्तियों के साथ आयी मारिया को देख कर अहमद ख़ुश हो गया.

'मारिया, आज कस्टमर्स को मैं देख लूंगा, तुम पीछे बैठ कर ये अनोखा गुलदस्ता बनाओ. वैसे ब्यूटीफुल मारिया को शॉप में ना देख काफ़ी लोग मायूस होंगे.' अहमद ने हंस कर कहा.

'शटअप, ये फुलिश चैलेंज़ तुमने ही लिया है. मुझे हार एक्सेप्ट करने को तैयार रहना चाहिए.'

शॉप के पीछे फूल रखने के लिए खाली जगह में

मारिया पत्तियां बिखरा कर बैठ गयी. मारिया ने एक से रंगों वाली और एक साइज़ वाली पत्तियां अलग कर लीं. कुछ देर सोचने के बाद उसके दिमाग़ में जैसे तस्वीर बन गयी, कैंची से पत्तियों को अलग-अलग शेप में काट कर मारिया ने जैसे फूलों से गुलदस्ते बनाती थी वैसे ही पत्तियों के रंगों, आकार और शेप से एक नायाब गुलदस्ता बना डाला. लाल, पीली, नारंगी. सुनहरी और बीच-बीच हरी पत्तियों से सज्जित बुके दर्शनीय बन पड़ा था. इस नायाब गुलदस्ते को देख कर अहमद चहक उठा.

'विनी ने ठीक कहा था, तुम सचमुच एक कलाकार हो. अब हमारी जीत पक्की है.' काफ़ी देर इंतज़ार के बाद भी विनी को ना आते देख कर वे निराश हो गये.

'लगता है, विनी ने सिर्फ़ मज़ाक किया था. तुमने बेकार इतनी मेहनत की.' अहमद कंसर्न था.

अचानक विनी को शॉप में आता देख दोनों के चेहरों पर ख़ुशी आ गयी.

'गुड मॉर्निंग विनी, आज आपको आने में देर हो गयी.' अहमद ने ख़ुशी से स्वागत किया.

'सॉरी, कुछ काम आ गया था. मेरा चैलेंज़ तो रेडी है.' मारिया पर नज़र डालते विनी ने कहा.

'ये रहा मारिया का कमाल, एक कस्टमर इसे लेना चाहता था, मुश्किल से मना किया.'

'अहमद, क्यों बेकार की बातें बना रहे हो, इसे तो किसी ने देखा ही नहीं है.' मारिया ने सच बताया.

'वाह! मारिया यक़ीन नहीं होता तुमने ये बुके फूलों से नहीं पत्तियों से बनाया है. इतने सुंदर गुलदस्ते को तो मैं अपने सब फ्रेंड्स को दिखाऊंगा. यह तो प्राइज़ विनिंग आइटम है. मैं अपनी हार मानता हूं. अहमद, बताओ तुम्हारा सबसे महंगा बुके कौन–सा है, मुझे इसकी क़ीमत देनी है,'

'थैंक्स विनी, पर मुझे इसकी क़ीमत नहीं चाहिए. जिन पत्तियों को उनके जीवन साथी पेड़ों ने अपने से अलग कर दिया, जो ज़मीन पर उपेक्षित पड़ी थीं, आपकी वजह से मैंने उन्हें एक नया रूप दिया है. मेरा तो सबसे बड़ा यही पुरस्कार है.' गंभीरता से मारिया ने कहा.

'तुम सिर्फ़ कलाकार ही नहीं, एक दार्शनिक और कवयित्री भी हो, मारिया. तुमने तो मेरी सोच ही बदल दी... ज़मीन पर पड़ी, पैरों से कुचली जाने वाली पत्तियों के दर्द को बस तुम ही सोच सकती हो. एक बात ज़रूर समझ गया हूं, मारिया तुम कोई साधारण लड़की नहीं हो.' विनी ने सच्चाई से कहा.

'यह बात तो सच है, बीस साल की हो जाने पर भी इसका कोई बॉय फ्रेंड नहीं है. वैसे मारिया को क़ीमत तो नहीं चाहिए, पर आप अपनी हार कैसे मनायेंगे?' अहमद ने मज़ाक किया.

'मैं तुम दोनों को ट्रीट तो दे सकता हूं. आज शाम को जब तुम दोनों काम से फ्री हो जाओगे तो हम बाहर डिनर लेंगे. मैं तुम्हें पिकअप कर लूंगा.' मारिया पर दृष्टि डालते विनी ने ख़ुशी से कहा.

'वाह, यह तो सचमुच हमारा इनाम होगा. हम आपका वेट करेंगे.'

'ठीक है, तैयार रहना.' बाय कह कर विनी चला गया.

'अहमद, क्या विनी के साथ जाना ठीक होगा? तुम ऐसे ही बोल देते हो.' मारिया परेशान दिखी,

'अब तो बोल चुका, वैसे भी क़ीमत ना ले कर तुमने मेरा नुकसान ही किया है.' अहमद हंस रहा था.

शाम को विनी के आने पर अचानक अहमद के घर से फ़ोन आ गया, उसे फ़ौरन घर पहुंचना था. विनी परेशान था, उसने रेस्टोरेंट में तीन जगह रिज़र्व करा रखी थीं. विनी के साथ अकेले रेस्टोरेंट जाने में मारिया संकुचित थी, पर अहमद ने समझाया — 'विनी के साथ जाने में कैसा डर? यह तो मेरी बदक़िस्मती है, अपना चांस खो रहा हूं, पर विनी, आपसे बाद में डिनर ज़रूर लूंगा.' अहमद ने मायूसी से कहा.

'ओह, श्योर, हम तुम्हें मिस करेंगे. चलें, मारिया.'

विनी के साथ आगे की सीट पर बैठती मारिया बेहद कॉन्शस थी. शायद घबराहट या संकोच से उसका सुंदर चेहरा लाल हो रहा था. सामने लगे मिरर में मारिया के गुलाबी चेहरे को देख विनी मुस्कुरा उठा, निश्चय ही मारिया सुंदर और टैलेंटेड युवती थी.

खाने में मारिया की पसंद की डिशेज़ पूछने पर मारिया मौन रह गयी. उस आलीशान रेस्टोरेंट को वह विस्मित देख रही थी. उसके मौन ने विनी को उसकी मनोदशा स्पष्ट कर दी.

'चाइनीज़ पसंद है या इंडियन फूड पसंद करोगी?'

'आपको जो पसंद हो, मंगा लीजिए.' धीमे स्वर में मारिया बोली.

खाने का ऑर्डर दे कर विनी ने पूछा —

'तुम कहां रहती हो, तुम्हारी फ़ैमिली में कौन–कौन हैं?'

'चर्च के एक छोटे से कमरे में अकेली रहती हूं. अब वही मेरा घर है. पापा की डेथ के बाद मम्मी ने दूसरी शादी कर ली और अपने हसबैंड के साथ लंदन चली गयीं.' मारिया के सुंदर मुख पर अवसाद की घनी छाया थी.

'तुम्हारी मम्मी तुम्हें अपने साथ क्यों नहीं ले गयी?' विनी ने पूछा.

'तब मेरी उम्र बस नौ साल की थी, पर मम्मी ने अपने नये पति की आंखों में ना जाने क्या देखा, बस मुझसे कहा, तुझे ले जाने में ख़तरा है. मेरा नया पति तेरा पापा नहीं बन सकता. मम्मी के साथ जाने के लिए बहुत रोयी, पर वह मुझे चर्च के फादर के पास छोड़ कर चली गयीं. कितनी रातें मम्मी की याद में रो-रो कर काटीं, फादर ने मुझे सहारा ज़रूर दिया, पर आज भी मम्मी की जगह खाली ही रही.' मारिया की पलकें भीग गयी थीं.

'मुझे तुम्हारे लिए दुःख है, पर तुम एक ब्रेव लड़की हो. देखो अब तुम अपने पैरों पर खड़ी हो.'

'इसके लिए चर्च के फादर की शुक्रगुज़ार हूं. चर्च के काम करते हुए पढ़ाई भी करती रही. हाई स्कूल के बाद मुझे महसूस हुआ अब मुझे फुल टाइम काम करना चाहिए.'

'तुम इस फ़्लोरिस्ट शॉप में कैसे आयीं?' विनी की उत्सुकता बढ़ रही थी.

'चर्च में प्रेयर और दूसरे फंक्शन्स में सजाने के लिए मैं फूलों के तरह-तरह के गुलदस्ते बनाया करती थी... बचपन से ही फूलों से मुझे बहुत प्यार था. हमारी फ़्लोरिस्ट शॉप का वृद्ध मालिक बॉब मेरे बनाये बुके बहुत पसंद करता था. उसने जब मुझे अपनी शॉप में जॉब का ऑफ़र दिया तो स्वीकार करने में देर नहीं की. अब तो बॉब ने मेरी ज़िम्मेदारी पर शॉप का काम देखना छोड़ ही दिया है. मुझे अपनी बेटी की तरह प्यार करता है.' मारिया का चेहरा गर्व मिश्रित ख़ुशी से जगमगा रहा था.

'अगर तुम्हें मारिया ना कह कर मीरा कहूं तो? जैसे तुम भी मुझे विनायक की जगह सिर्फ़ विनी कहती हो.' अचानक विनी बोल बैठा.

'मीरा की क्या मीनिंग होती है, मीरा कौन थी?' मीठी आवाज़ में मारिया ने जानना चाहा.

'मीरा हमारे कृष्ण भगवान के लिए प्यार और भक्ति का नाम है. कृष्ण के प्रेम में मीरा ने सारे सुख, अपना महल, राजा पति सब छोड़ दिया. मंदिर में कृष्ण के लिए गाती और नाचती थी. आजकल यहां 'मीरा' फ़िल्म लगी है, तुम्हें फ़िल्म दिखाने ले चलूंगा. फ़िल्म में अंग्रेज़ी के सब-टाइटिल्स हैं तुम समझ सकोगी, मीरा की कहानी देख कर उसका सच्चा प्रेम समझ सकोगी.'

'क्या आप भी मीरा से प्यार करते हैं?' मारिया की दृष्टि विनी के चेहरे पर थी.

'जिस मीरा की बात कर रहा हूं, वो तो कृष्ण की दीवानी थी, पर हां मैंने भी मीरा नाम की एक लड़की से बहुत प्यार किया था उसके जाने के बाद जैसे मेरी ज़िंदगी ही ख़त्म हो गयी थी.' विनी चुप हो गया.

'आपकी मीरा कहां चली गयी, अब कहां है?'

'उसका नाम मीरा ज़रूर था, पर उसमें मीरा जैसी कोई बात नहीं थी. उसे मुझसे नहीं, पैसों से प्यार था, मुझे अकेला छोड़ कर मेरे एक अमीर दोस्त के साथ चली गयी. मैं पूरी तरह से टूट गया था, पर तुमसे जब से मिला हूं, मुझे लगता है तुम में मीरा की सादगी है. शायद इसीलिए आज अचानक मेरे दिल ने तुम्हें मीरा पुकारा है, पर डरता हूं कहीं ये नाम तुम्हें दूर ना ले जाये.'

उदास स्वर में विनी ने अपने दिल का दुःख सुनाया.

मारिया को उसके छोटे से कमरे में छोड़ कर जाने के बाद मारिया विनी के बारे में सोचती रही. विनी ने किसी को प्यार किया, पर उसे प्यार के बदले में धोखा मिला. कैसे उसने अपने को सम्हाला होगा? कौन थी वो लड़की जिसने विनी जैसे अच्छे इंसान को धोखा दिया. विनी के मन को मुझ में मीरा दिखाई दी, क्या मैं मीरा बन सकती हूं? मेरे लिए वह कितना सोचता है, काश उसकी मदद कर पाती. अपने सोच को झटक मारिया सोने की कोशिश करती रही, पर विनी का उदास चेहरा बार-बार आंखों के सामने आ जाता. नहीं वह विनी को कभी धोखा नहीं दे सकती.

अहमद के साथ विनी मारिया को फ़िल्म दिखाने ले गया. मारिया तो कुछ दृश्यों में आंसू पोंछ रही थी. फ़िल्म से निकल कर अहमद ने मारिया की हंसी उड़ायी थी —

'मारिया अभी भी छोटी बच्ची है, फ़िल्म में भला

कोई रोता है?'

'कृष्ण से मिले बिना भी मीरा कैसे उसे इतना प्यार कर सकी?' मारिया ने विनी से पूछा था.

'यही तो सच्चा प्यार होता है, इसी प्यार की वजह से मीरा सब प्यार करने वालों के दिल में बसती है. मेरे पास अंग्रेज़ी में मीरा की कहानी की क़िताब है. तुम उसे पढ़ना, तब उसका प्रेम समझ सकोगी,' विनी ने गंभीरता से समझाया था.

उस दिन के बाद से मारिया के मन पर जैसे मीरा ने अधिकार कर लिया था. उसके मन-मानस पर मीरा छा गयी थी. उसका प्यार, त्याग ही नहीं उसके भजन भी दोहराती. क़िताब पढ़ती सोचती, क्या वह भी किसी को मीरा की तरह से प्यार कर सकती है, जिसके लिए अपना सब कुछ न्योछावर कर दे? विनी के मुंह से अपने लिए मीरा पुकारना उसे बहुत अच्छा लगता.

अब विनी अक्सर मारिया से गुलदस्ते लेने पहुंच जाता था. अहमद उसे छेड़ता — 'गुलदस्ते ले जाने के लिए बार-बार आना तो मारिया से मिलने आने का बहाना है. अब विनी के दिल पर मारिया का साम्राज्य है. वैसे शायद मारिया तुम्हें भी विनी अच्छा लगता है.'

'बेकार की बातें मत बना, जैसे तुम नूरी से मिलने जाने के बहाने खोजते हो. विनी ऐसा नहीं है.' मारिया का मुख लाल हो जाता.

एक दिन जब विनी बुके लेने आया तो अहमद पूछ बैठा — 'एक बात बताओ, तुम रोज़ बुके किसके लिए ले जाते हो, विनी?'

'हॉस्पिटल में मेरा एक फ्रेंड एडमिट है, उसके कमरे में रोज़ ताज़े फूल रखने से उसे अच्छा लगता है, मुरझाए फूल ख़ुशी की जगह अवसाद दे सकते हैं, यही सोच कर उसके लिए बुके ले जाता हूं.'

'ये तो बहुत अच्छी बात है, अब आगे से तुमसे गुलदस्तों के पैसे नहीं लेंगे.' मारिया ने कहा.

मारिया भी अब विनी के साथ सहज हो गयी थी. कभी एक दिन विनी ने मारिया को अपने घर और मां-बाप के विषय में भी बताया था. केरल में नारियल और केले की हरियाली से घिरा हुआ उसका घर है. विनी उनका एकलौता बेटा है, उसकी अम्मा सामान्य गृहिणी हैं, पर उसके पापा हिंदी और संस्कृत के ज्ञाता हैं विनी ने भी हिंदी उन्हीं की

प्रेरणा से सीखी है.

'तुम मुझे भी हिंदी सिखाओगे, विनी?' अचानक मारिया पूछ बैठी.

'अगर तुम्हें सचमुच हिंदी सीखनी है तो तुम्हारी मदद करके मुझे बहुत ख़ुशी होगी मीरा. मैं चाहता हूं, जब तुम मेरे पेरेंट्स से मिलो तो तुम उनके साथ आसानी से बात कर सको. मेरी अम्मा अंग्रेज़ी नहीं समझती, पर हिंदी समझती हैं.'

'मैं तुम्हारे पेरेंट्स से कैसे मिल सकूंगी, क्या वो अमरीका आ रहे हैं?' मारिया उत्सुक हो उठी.

'हो सकता है तुम उनसे मिलने मेरे साथ इंडिया चलो.' विनी के चेहरे पर शरारत थी.

'कैसे, क्या तुम मुझे इंडिया ले चलोगे?' मारिया विस्मित थी.

'इंतज़ार करो, धैर्य का फल मीठा होता है.' विनी ने गंभीरता से कहा.

मारिया मनोयोग पूर्वक विनी से हिंदी लिखना-पढ़ना सीख रही थी. उसकी मेहनत विनी को विस्मित करती. कुछ ही दिनों में वह काफ़ी हिंदी लिखने और विनी की बातें समझने लगी थी.

कुछ दिनों बाद विनी ने अचानक मारिया से कहा था — 'कुछ दिनों के लिए अपने घर केरल जा रहा हूं, अम्मा बहुत याद करती है. मुझे मिस करोगी, मीरा?'

'कब जा रहे हो, कितने दिनों में लौटोगे? तुम्हें बहुत मिस करूंगी, विनी.' मारिया जैसे व्याकुल हो उठी.

'कुछ ज़रूरी काम है, हिंदी पढ़ती रहना, लौट कर टेस्ट लूंगा, क़िताबें छोड़े जा रहा हूं.'

विनी के इंडिया चले जाने से जैसे मारिया की ज़िंदगी ही सूनी हो गयी थी. हर रोज़ उसका इंतज़ार करती मारिया

कहीं खो सी जाती. गुलदस्ते बनाती उंगलियों में असावधानी के कारण कांटे चुभ जाते.

'तुझे विनी से प्यार हो गया है, मारिया. अल्लाह से दुआ करूंगा, तुझे तेरा प्यार मिल जाय.' अहमद उसके लिए कंसर्न होता.

अचानक अहमद के अब्बा को हार्टअटैक हो जाने की वजह से अहमद को अपने वतन जाना पड़ा. उसकी जगह एक लड़की ऐनी आ गयी थी. विनी और अहमद के ना होने से मारिया को वक़्त काटना मुश्किल लगता. आख़िर बीस दिनों के लंबे इंतज़ार के बाद विनी को आते देख, मारिया का मुरझाया चेहरा खिल उठा.

'कैसी हो, मीरा? मुझे मिस किया या अपने काम में मुझे भुला दिया?' विनी मुस्कुरा रहा था.

'इतने दिन क्यों लगा दिये, बहुत याद करती थी.' भोलेपन से मारिया ने सच्चाई बयान कर दी.

'अम्मा-अक्का को अपने साथ लाने की कोशिश कर रहा था, पर वो अपना घर छोड़ कर आने को तैयार नहीं हुए. जानती हो इंज़ीनियरिंग के बाद जब मैंने अपनी कंपनी की तरफ़ से अमरीका में पोस्टिंग लेने की बात कही तो अम्मा मुझे आने ही नहीं देना चाहती थीं, पर मेरी इच्छा और मेरे भविष्य के बारे में सोच कर अक्का ने किसी तरह से अम्मा को मनाया था.' विनी के चेहरे पर यादों की छाया थी.

'तुम लकी हो, विनी, तुम्हारी अम्मा तुम्हें बहुत प्यार करती हैं.' आवाज़ उदास थी.

'आज शाम तुमसे मिलने तुम्हारे घर आऊंगा, इंतज़ार करना.' एक भी बुके लिये बिना विनी लौट गया.

मारिया को शाम का बेसब्री से इंतज़ार था. उसके कमरे में विनी आने वाला है, सोच कर मारिया समझ नहीं पा रही थी, वह क्या करे, कैसे विनी का स्वागत करेगी. वह घर क्यों आ रहा था? वजह पूछने का उसने मौक़ा ही कहां दिया था.

दरवाज़े की दस्तक सुनती मारिया के दिल की धड़कन तेज़ हो गयी. आज पहली बार उसके छोटे से कमरे में कोई आ रहा था. दरवाज़े पर मुस्कुराता विनी खड़ा था. मारिया को हाथ में पकड़ा सुर्ख लाल गुलाब देकर, 'हैप्पी बर्थ डे मीरा कह कर मारिया को चौंका दिया था.

'तुम्हें कैसे पता आज मेरा बर्थ-डे है?' मारिया विस्मित थी.

'जिसे प्यार किया जाय, उसके बारे में इतना तो पता होना ही चाहिए.'

'यह क्या कह रहे हो, विनी, तुम मुझसे... नहीं यह सच नहीं है.' मारिया यक़ीन नहीं कर पा रही थी.

'यही सच है मीरा, तुमसे दूर जा कर इस सच्चाई को जान सका हूं, क्या तुम मुझसे शादी करोगी, मीरा?

तुम्हारे साथ शादी के लिए अपने पेरेंट्स को राजी करके आया हूं. मुझे स्वीकार कर लो, मीरा.'

'समझ नहीं पा रही हूं, क्या यह सच हो सकता है?' मारिया सोच में पड़ गयी.

'यही सच है, मैं जानता हूं तुम मुझे पसंद करती हो, एक दिन प्यार भी करोगी, इसका विश्वास है.'

चाह कर भी मारिया अपना दिल खोल कर नहीं कह सकी कि उसने सिर्फ़ और सिर्फ़ विनी को ही चाहा है, उसके इंतज़ार में उसने कैसे एक-एक दिन काटा है.

'अगर तुम मुझे स्वीकार करो तो ये साड़ी इंडिया से लाया हूं. विवाह के समय यही ट्रेडीशनल साड़ी पहनी जाती है.. तुम सोच कर फ़ैसला करना. साड़ी तुम्हारे पास छोड़े जा रहा हूं.' दरवाज़ा खोल कर विनी चला गया.

अवाक मारिया कुछ भी ना कह सकी, ना उसे रोक सकी. विनी के लिए लाया केक वैसे ही रखा रह गया था. जो कुछ सोचा था, मन में ही रह गया. पूरी रात सोचने के बाद मारिया निर्णय कर चुकी थी.

प्यार से साड़ी को सीने से लगा, मारिया ने उसे सम्हाल कर अलमारी में रख दिया. हां वह विनी से प्यार करने लगी थी. हमेशा लड़कों से दूर रहने वाली मारिया विनी की मीरा बन गयी थी.

दूसरे दिन मीरा की हां सुनते ही विनी चहक उठा.

'बस तुम्हारी हां का इंतज़ार था, हम अभी आज ही विवाह कर लेंगे. मुझसे इंतज़ार नहीं होगा.'

विवाह के लिए विनी के माता-पिता की अनुपस्थिति मीरा को खल रही थी. उसकी मां तो नहीं थी, पर काश विनी के पेरेंट्स उन्हें आशीर्वाद देने आ जाते. मीरा की इच्छा थी उसका विवाह चर्च में हो जाता, पर विनी को ये मंजूर नहीं था. काश आज अहमद ही उनके साथ होता.

'विवाह दो लोगों के बीच होता है, इसके लिए पंडित या प्रीस्ट की ज़रूरत मैं नहीं मानता. हमने सच्चे दिल से

एक-दूसरे को स्वीकार करके विवाह किया है. माला बदलना काफ़ी होता है. एक बात और याद रखना अब तुम सिर्फ़ मेरी मीरा हो, मारिया नाम हमेशा के लिए भुलाना होगा.' विनी ने कहा.

विनी और मारिया एक-दूसरे के गले में माला पहना कर विवाह-बंधन में बंध गये, मारिया को विनी की कही हर बात मान्य थी. बॉब ने मारिया को सुंदर नेकलेस दे कर प्यार से सीने से चिपटा लिया. मारिया अब पूरी तरह से विनी की मीरा बन गयी थी, उसे अब अपना पुराना नाम भी याद नहीं था.

विवाह ने दोनों के जीवन में ख़ुशियों के रंग भर दिये. एक-दूसरे को पा कर दोनों पूर्ण हो गये थे. विनी के प्यार में मीरा जैसे जागते हुए सपने जी रही थी. विनी उसके जीवन का केंद्र-बिंदु बन गया था. विनी भी मीरा-मय बन गया था.

'हम तुम्हारे पेरेंट्स से मिलने इंडिया कब जायेंगे, विनी?' मीरा उसके पेरेंट्स से मिलने को उत्सुक थी.

'जब तुम्हें साड़ी पहनना आ जायेगा. वहां तुम्हारी अमरीकी ड्रेस नहीं चलेगी.' विनी ने मज़ाक किया.

'ठीक है, अब तो जल्दी ही अपनी इंडियन फ्रेंड के पास जाना होगा.' मारिया गंभीर थी.

समय पंख लगा कर उड़ रहा था. मीरा ने सिर्फ़ साड़ी पहनना ही नहीं सीखा इंडियन डिशेज़ भी बनानी सीख ली थीं. अपने विनी की ख़ुशी के लिए वह हर संभव प्रयास करती. विनी के ऑफ़िस से आने के पहले वह सब काम समाप्त करके विनी की प्रतीक्षा करती. विनी आते ही उसे अपनी सबल बांहों में भर लेता. मीरा का रोम-रोम ख़ुशी से नाच उठता. अब मीरा को ज़िंदगी से बेहद प्यार हो गया था... उसकी मीठी आवाज़ गीत गुनगुनाने लगी थी. घर के बाहर रंग-बिरंगे फूल मुस्कुराते. एक साल बीतने आ रहा था, पर विनी से बार-बार कहने पर भी वह इंडिया जाने को उत्सुक नहीं था. हमेशा काम का बोझ उस पर रहता.

जिस दिन मीरा को पता लगा वह मां बनने वाली है, उसकी ख़ुशी की सीमा नहीं थी.

'विनी, जानते हो हमारे घर एक नया मेहमान आने वाला है. हम दोनों मम्मी-पापा बनने वाले हैं.'

ख़ुशी से पगी आवाज़ में सूचना देती मीरा के गालों पर गुलाब खिल आये थे.

'क्या यह कैसे हो गया? हम अभी बेबी को नहीं ला सकते. अम्मा को कैसे बतायेंगे.' विनी परेशान था.

'क्यों, क्या तुमने अभी तक मम्मी को हमारी शादी के बारे में नहीं बताया है.' मीरा विस्मित थी.

'मैंने अम्मा-अक्का को तुम्हारे बारे में बताया है, वे चाहते हैं हम दोनों इंडिया के मंदिर में शादी करें. उन्हें यह नहीं बताया है कि हमने यहां शादी कर ली है. सोचा था, एक-दो महीने बाद हम दोनों इंडिया जायेंगे, पर अब तो उन्हें सच्चाई बताने मुझे पहले अकेले ही जाना होगा.' विनी ने गंभीरता से कहा.

'तुमने ऐसा क्यों किया, विनी. मां–पापा से इतनी बड़ी बात क्यों छिपायी?' मीरा ने दुःख से कहा.

'परेशान मत हो. मैं अगले हफ़्ते इंडिया जा कर उन्हें सब समझा दूंगा, फिर हम दोनों साथ में इंडिया चलेंगे.' प्यार से मीरा को सीने से लगा कर विनी ने कहा.

मीरा को आश्वस्त कर विनी इंडिया चला गया, जाते समय चिंतित मीरा उसका फ़ोन नंबर भी लेना भूल गयी. जाते-जाते विनी ने वादा किया वह उसे इंडिया पहुंच कर फ़ोन करता रहेगा. उसका घर केरल के एक विलेज़ में है, वहां इंटरनेट की सुविधा नहीं है, इसलिए शायद फ़ोन भी देरी से कर पायेगा. वैसे जल्दी ही विनी उसे अपने घर ले जायेगा. केरल की सुंदरता देख कर मीरा अमरीका भूल जायेगी. मीरा के माथे पर चुंबन अंकित कर विनी चला गया था.

दिन बीतने लगे, पर विनी का कोई फ़ोन नहीं आया. मीरा बेचैन थी, पर विनी ने कहा था, शायद वहां से फ़ोन लगाना कठिन होता होगा. अपने पेरेंट्स को समझाने में भी भी समय लगेगा.

अहमद वापिस आ गया था, मीरा की शादी की बात सुन कर नाराज़गी जताते हुए कहा — 'आने दो विनी को, ऐसी भी क्या जल्दी थी, मेरा भी इंतज़ार नहीं किया. उसके लौटने पर डबल पार्टी लूंगा.' अहमद को ऐसी जल्दी में विवाह का औचित्य समझ में नहीं आया, सोचा शायद प्यार में ऐसी ही दीवानगी होती होगी!

अचानक एक दिन किसी अपरिचित के फ़ोन ने मीरा को संज्ञाशून्य-सा कर दिया.

'क्या आप मारिया विन्सेंट बोल रही हैं?'

'जी हां, पर अब शादी के बाद से मीरा नाम से जानी जाती हूं.' मीरा ख़ुशी और उत्सुकता से बोली.

'आपको एक दुखद सूचना देनी है, एक एक्सीडेंट में विनायक की मौत हो गयी है. अपने को संभालिएगा.'

'क्या, कब कैसे?' मीरा कुछ पूछ पाती कि फ़ोन कट चुका था.

ख़बर मिलते ही अहमद आ गया. जिस नंबर से फ़ोन आया था, अहमद द्वारा उस नंबर पर फ़ोन लगाने से पता लगा वो किसी पी. सी. ओ. का नंबर था. मीरा बेहाल थी. विनी के साथ रहने पर भी उसने कभी ना तो विनी की अमरीकी कंपनी का नाम पूछा ना उसके केरल के घर का पता उसके पास था. उसके लिए बस विनी का साथ ही उसका संसार था. यहां तक कि उसने विनायक का सरनेम भी कभी नहीं जानना चाहा. एक बार पूछने पर विनी ने हंस कर कहा था — 'क्यों सिर्फ़ विनी ही काफ़ी नहीं है?'

विनी ने ठीक ही तो कहा था, उसके लिए तो विनी में ही मीरा की पूरी दुनिया सिमटी हुई थी.

अहमद परेशान हो गया, मीरा से कहा — 'तू भोली है, यह बात तो जानता था, पर यह नहीं जानता था कि तुझ में इतनी भी अक़्ल नहीं होगी कि जिसके साथ पूरी ज़िंदगी बिताने के लिए शादी कर रही थी, उसका पूरा नाम, उसका इंडिया और उसकी कंपनी का पता भी नहीं जानना चाहा. इतने बड़े देश में सिर्फ़ नाम से किसी को जानना आसान नहीं है.'

'उस स्थिति में मीरा ने फिर चर्च की शरण ली. निश्चित समय पर मीरा ने एक प्यारे से बेटे को जन्म दिया. अहमद ने उसको 'नायक' नाम दिया. विनायक का बेटा नायक कहलाएगा. वृद्धा सिस्टर मार्था ने मां और बच्चे दोनों को संभाला था.

'बॉब के बहुत कहने पर भी फिर उस फ़्लोरिस्ट शॉप में काम के लिए जाना मंजूर नहीं किया जहां विनी से उसकी भेंट हुई थी. जीविका के लिए एक टैक्सी कंपनी में काम करना शुरू किया था तबसे यही काम कर रही हूं.' मीरा की आवाज़ में उदासी थी.

'मीरा तुम अभी यंग हो, सुंदर हो, तुमने ज़िंदगी में आगे बढ़ने की नहीं सोची? तुमसे शादी करने के लिए बहुत से अच्छे लड़के मिल जायेंगे.' नीता जी पूछ बैठी.

'आपने तो मीरा के बारे में सुना होगा, मैं विनी की मीरा हूं, अब उसके अलावा किसी दूसरे के बारे में सोच भी नहीं सकती. वह हमेशा मेरी यादों में मेरे साथ रहेगा.'' इतना कह कर वह चुप हो गयी.

नीता जी आवाक् थीं, एक अमरीकी लड़की ने मीरा को किस तरह से आत्मसात कर लिया था. कुछ देर के मौन के बाद मीरा ने भीगे स्वर में नीता जी से अनुरोध किया — 'मैडम, क्या आप मेरे विनी का पता लगा सकती हैं? वो शायद दिल्ली की किसी कंप्यूटर कंपनी में काम करता था. मैं उसके पेरेंट्स से मिलना चाहती हूं, उन्हें अपना ग्रैंड सन देख कर कितनी ख़ुशी होगी. अपनी ज़िंदगी में यह काम पूरा करके उन्हें ख़ुशी देना चाहती हूं.'

'मुझे तुम्हारी हेल्प कर के बहुत ख़ुशी होती, पर सिर्फ़ नाम से किसी को खोज पाना सागर से मोती निकालने जैसा कठिन काम है अगर विनायक का सरनेम जानतीं तो उसे लोकेट कर पाना आसान होता. तुम्हारे पास विनायक की कोई फ़ोटो तो होगी, उसकी मदद से उसका पता लगाया जा सकता है.'

'नहीं, विनी हमेशा हम दोनों का वीडियो लिया करता था, कहता था, जब हम दोनों चौबीस घंटे साथ रहते हैं तो फ़ोटो रखने की क्या ज़रूरत है. हमारी तस्वीर अपने पेरेंट्स को दिखाने के लिए विनी वीडियो कैमरा अपने साथ इंडिया ले गया था. अब तो नायक को अपने पापा की तस्वीर भी नहीं दिखा सकती.'

'ताज़्ज़ुब है, तुम्हारे पास विनायक के बारे में कोई भी इन्फ़ॉर्मेशन नहीं है.' नीता जी को यक़ीन करना कठिन लग रहा था, अमरीका में पली लड़की क्या इतनी नादान हो सकती है या यह उसकी प्रेम में ऐसी दीवानगी और अंधा विश्वास था?

'हां याद आया, एक बार उसने कहा था टेम्पल में जो आइडल यानी मूरत होती है वैसा ही कुछ उसका सरनेम है.' कुछ सोच कर मीरा ने कहा.

अचानक जैसे बिजली सी कौंध गयी, नीता जी को याद आया अभी अमरीका आने के दो दिन पहले कंप्यूटर सेक्शन से विनायक मूर्ति अपनी शादी की ख़ुशी में उन्हें मिठाई देने आया था. नीता जी के साथी ने उससे परिहास किया था — 'जानते हो विनायक, नीता मैडम शिकागो जा रही हैं, तुम भी तो वहां एक साल की पोस्टिंग पर गये थे. अगर वहां कोई गर्ल फ्रेंड बना ली हो तो उसे मैसेज़ भिजवा दो.'

(शेष पृष्ठ २० पर देखें...)

पांव बदलता सफ़र

अनुपम श्रीवास्तव

वह शहर छोड़ते समय अपने आपको साथ ले जाना चाहता था पर उसे लग रहा था कि वह शहर से कुछ ज़रूरी सामान और कुछ यादों के सिवा कुछ भी साथ नहीं ले जा पायेगा, बक़ाया सब इसी शहर में छूट जायेगा. गांव से क़स्बे, क़स्बे से जिला मुख्यालय, जिला मुख्यालय से प्रदेश राजधानी भोपाल तक का पूरा सफ़र उसे याद है. अतीत का कुछ हिस्सा समय के साथ स्मृतियों में धुंधलाया ज़रूर है पर भूला नहीं है. पिताजी गांव से जब चले थे तो उनका शायद सब गांव में ही छूट गया था, पिताजी पूरी ज़िंदगी उस हिस्से को भूले नहीं थे. क़स्बे का समय बहुत ज़्यादा नहीं था वहां पर अस्थाई सा ठिकाना था पर वहां से भी सब खाली हाथ आगे चले थे, वहां शायद उसका सब छूट गया था, मां छूट गयी थीं. फिर उस तहसील मुख्यालय में जहां ज़िंदगी का काफ़ी हिस्सा बीता था वहां से वह अकेला ही खाली हाथ चला था. पिता को लगा था कि अब वे थक गये हैं इसलिए वे वहीं क़स्बे में रुक गये थे. पिताजी के थकने से सफ़र कहां रुकने वाला था, सफ़र तो अब उसके पावों में था इसलिए वह पिताजी को पीछे छोड़कर खाली हाथ आगे चल पड़ा था. वह आकर थमा था इस राजधानी में जिसे भोपाल कहते हैं. गांव के रास्ते शहर, फिर और बड़े शहर तक उसकी स्थिति बड़ी हुई पर जो पीछे छूटा उसकी कसक कभी कम नहीं हुई.

यहां से जाने की तैयारियों के साथ वह निराश था. अब तक वह दुविधा में था कि वह शुभी के पास बैंगलोर जाये या तरुण के पास कनाडा जाये. बैंगलोर भी उसके लिए अजनबी शहर था पर बैंगलोर भारत का हिस्सा है इसलिए उसे लगता था कि उसे वहां ज़्यादा अपना-सा लगेगा पर न जाने क्यों बेटी के घर रहने में उसके मन में हिचक सी महसूस हो रही थी. उसे लगा आदमी के संस्कार परिवेश के साथ आसानी से नहीं बदलते हैं. वह बेटे तरुण के पास रहने के अपने अधिकार को स्वीकार करता था पर तरुण तो कनाडा में बस गया है और वह कनाडा जाकर रहने की बात कभी सोच भी नहीं सकता है. बैंगलोर से तो वह यदाकदा भोपाल आने की हिम्मत जुटा सकता है पर यदि कनाडा से अकेले आना हो तो शायद हिम्मत नहीं जुटा पायेगा. उसके शहर से जाने का विचार जैसे कमज़ोर होता जा रहा था. उसे नहीं लग रहा था कि वह यहां से जा पायेगा.

वह हमेशा से सफ़र में आत्मसंतुष्टि के साथ ठहरना चाहता था पर उसे लग रहा है कि इस प्रकार सफ़र में ठहरना आत्मसंतुष्टि नहीं वरन अरुचि है जो उसकी थकान का परिणाम है. सफ़र में पीछे छूटे अपने लोगों की इस थकान की याद का अनुभव भी वह महसूस कर सकता था. उसे लग रहा है वह शिथिल हो गया है इसलिए इस अधूरे सफ़र को अंत मानकर रुक जाना चाहता है. अपने जीवन में इस स्थिति को वह कई बार देख चुका था. उसे मालूम है जो थक जाता है उसे रुकना पड़ता है बक़ाया सफ़र में आगे बढ़ जाते हैं कोई किसी के लिए नहीं रुकता. इन अंतहीन रास्तों पर कोई किसी के लिए लौटकर नहीं आता है. उसे लग रहा था जैसे पिताजी के पैरों से निकल कर जो सफ़र उसके पैरों में आया था वह अब तरुण के पैरों में चला गया है. वह बेचैन होकर पलंग पर लेट गया और अपना ध्यान बंटाने के लिए उसने टीवी ऑन कर लिया. टीवी स्क्रीन पर दक्षिण अफ्रीका के जंगल में घास के मैदानों में खाने की तलाश में जाते हुए जंगली जानवरों के झुंड दिखाई दे रहे थे. वह

निष्प्रयोजन उन्हें देखता रहा. शिकारियों से जूझते, अशक्त और घायलों को पीछे छोड़ता यह झुंड बच्चों की सुरक्षा करता चला जा रहा था. वह भी जैसे इस झुंड के साथ यात्रा पर निकल पड़ा.

यह यात्रा बचपन में शुरू हुई थी. उस समय उसे नहीं मालूम था कि यात्रा क्या होती है. झुंड के महफ़ूज साये में वह नन्हें बछड़े की तरह बढ़ता चला गया. उसे न वर्तमान संकट का पता था न ही आने वाली परेशानियों की संभावनाओं का अनुमान था. गांव में क्या आफत आयी थी उसे उसकी कोई चिंता नहीं थी. वह तो भूख लगते ही मां के पास आ जाता था. यह खाना कहां से जुटाया जाता है उसे इस बात से कोई लेना देना नहीं था. वह गांव की सुरक्षित सीमाओं में छोकरों के साथ उछलता-कूदता और मस्त रहता था. उसे बस चिढ़ थी तो स्कूल और स्कूल के मास्टर से, किसी तरह स्कूल ने उसे और उसने स्कूल को दो जमात तक बर्दाश्त किया था. इस यात्रा में सबसे ज़्यादा ख़ुशी तो उसे स्कूल पीछे छूटने की थी.

बादलों ने गांव से मुंह मोड़ लिया था. दो साल से खेतों में जैसे कुछ नहीं हुआ था. पानी की कमी से आदमी क्या पशु-पक्षी भी बेहाल हो रहे थे. इस साल भी जब बादलों ने नाराज़ी दिखायी तो ज़िंदगी की ज़रूरतों के लिए नये इलाक़े में जाना ज़रूरी हो गया था. एक समूह बनाकर नये इलाक़े के लिए गांव वाले निकल पड़े थे. उसे आज भी याद है छोटे से स्टेशन पर पहुंचे थे. स्टेशन पर पानी का नल देखकर कुछ देर तो समूह जैसे सब भूल गया था. पहले सबने जी भर के पानी पिया था. गठरियों में बंधा हुआ सारा सामान एक जगह एकत्र कर समूह ट्रेन की प्रतीक्षा में बैठ गया था. समूह अंदाज़े के साथ नहीं पीढ़ियों के अनुभव की बुद्धिमत्ता से आगे बढ़ता है. गांव के जो लोग पहले रोज़ी-रोटी के लिए बाहर जा चुके थे समूह ने उन्हें अपना अगुवा बना लिया था.

रात पैसेंज़र ट्रेन आयी जिसमें आदमी और सामान को ठूंसा गया. उसे ज़्यादा कुछ नहीं पता उसे तो जैसे नींद में ही ट्रेन में चढ़ा दिया गया था. उसके पास कोई चिंता नहीं थी. उसके पास तो सिर्फ़ जिज्ञासा थी, कौतूहल था. वह पहली बार ट्रेन की यात्रा कर रहा था. उसके मन में सिर्फ़ रोमांच था. इस भीड़ में उसने अभी तक नहीं देखा था कि कौन साथ आया है कौन छूट गया है. वह तो यात्रा की उत्सुकता की हडबड़ी में खोया था.

: प्रकाशन :

अंजुरी भर सुख, पश्चिम का सूरज और एक सलीब, मेरे लिए (कविता पुस्तिकाएं) आंगन वाला नीम, जंगल से गुजरते हुए, अधूरे सफ़र के अंत में, ठीक पिछले साल की तरह, बचा है सिर्फ़ अकेलापन (कविता संग्रह), कॉमन लव स्टोरी, अजनबी रिश्तों का पार्क अपने अपने हिस्से का कबाड़ (कहानी संग्रह), पत्र पत्रिकाओं में तीन दर्जन से अधिक कहानियां एवं सैकड़ों कविताएं प्रकाशित.

: संप्रति :

जिला न्यायाधीश, जिला एवं सत्र न्यायालय

जि.: राजगढ़ (म. प्र.) ४६५६६१

आज भी उसे लगता है कि उस यात्रा के रोमांच के शिखर को वह फिर कभी नहीं जी पाया है. ट्रेन के बाथरूम के पास खाली जगह में सामान के साथ फंसे हुए उसने रात गुज़ारी थी. बल्ब की पीली मद्धम रोशनी में नज़ारा करने की कोशिश में उसे कब नींद आ गयी पता नहीं चला.

सुबह जब उसे ट्रेन से उतारा गया तो वह जैसे बिना जागे ही प्लेटफॉर्म पर उतरा था. वह कहां था? उसे कहां जाना था? उसे कुछ पता नहीं था. वह तो क़ाफ़िले के साथ पूरी तरह निश्चिंत था और हर अगले पल की प्रतीक्षा कर रहा था. क़ाफ़िला वहां से चलता हुआ एक गांव में पहुंचा जहां से बरगद के नीचे क़ाफ़िले ने अपना डेरा जमा लिया.

दिन में उसने ग़ौर किया कि उसके दादा नहीं दिख रहे हैं. दादा आये नहीं या उन्हें लाया नहीं गया उसे समझ में नहीं आया. उसे दादाजी से कोई ख़ास लेना-देना वैसे भी नहीं था. दादाजी अधिकतर बिस्तर पर रहते थे और खांसते रहते थे. न जाने क्यों जिज्ञासा में उसने दादाजी के बारे में मां से पूछ लिया तो मां ने बताया कि दादाजी बीमार थे और गांव भी नहीं छोड़ना चाहते थे. उसकी जिज्ञासा का अंत हो

गया इसके बाद उसने दादाजी के बारे में कभी जानने की कोशिश नहीं की. उसे कभी यह भी ख़्याल नहीं आया कि गांव में दादाजी कैसे होंगे? और उनका अब कौन ख़्याल रखता होगा? मां के बाद उन्हें अब कौन रोटी देता होगा? उसने फिर कभी दादाजी के बारे में मां-पिताजी से बात नहीं की. शायद मां-पिता दादाजी के बारे में सोचते होंगे उसे नहीं पता उसने तो इसके बाद सिर्फ़ मां-पिता को आजीविका के सफ़र में चलते देखा है.

वह अपने पिता के बारे में सोचता है इसलिए उसे लगता है कि मां–पिताजी ज़रूर दादा के बारे में सोचते होंगे, उसने पिता की तस्वीर की ओर देखा. पिताजी की तस्वीर को देखते-देखते उसकी आंखें टी. वी. तक पहुंच गयीं, टी. वी. अभी भी चल रहा था. टी. वी. स्क्रीन पर जंगली जानवरों का झुंड नदी से गुज़र रहा था. मगरमच्छों के शिकारी साथियों को पीछे छोड़ समूह आगे की यात्रा में तेज़ी से नदी से निकलता जा रहा था. नदी में मरे हुए जानवरों की लाशें तैर रही थीं, उन लाशों की तरफ़ समूह में देखने वाला कोई नहीं था. उसने टी. वी. बंद कर दिया. उसे नींद नहीं आ रही थी. वह इस समय विचारों की दुनिया से बाहर निकल आना चाहता था उसने नींद की गोली खायी और सोने की कोशिश में जुट गया. अतीत से बचते बचाते आख़िरकार वह अंधेरेपन की ओर बढ़ने लगा.

□

सुबह शहर की आवाज़ों की भीड़ थी पर वह अपने अकेलेपन के साथ जागा. घर से निकलकर आया तो देखा देर हो चुकी है, सुबह घूमने वाले लौट रहे हैं. उसने अपने भव्य घर को निहारा. अपने इस घर को देखकर जैसे उसे हर बार नयी संतुष्टि मिलती है. बाहर दरवाज़े पर पीतल के बड़े-बड़े अक्षरों से लिखा उसका नाम उसके अस्तित्व को जैसे स्थायित्व देता है. उसे लगने लगा था कि इस यात्रा में भटकते-भटकते उसे एक ऐसा इलाक़ा मिल गया है जहां पीढ़ियों के लिए न ख़त्म होने वाले जीवन के साधन हैं. दरवाज़े पर ऊपर लिखा है तरुण ब्रिक्स. यहां सब कुछ तो है तरुण के लिए, पर तरुण यहां नहीं रहना चाहता है, शायद तरुण के हिसाब से यहां कुछ भी नहीं है. अचानक ही उसे यह भव्य इमारत ईंट का खंडहर दिखायी देने लगी.

वह रोज़ दोस्तों के साथ घूमने निकलता था. लौटकर सब कहीं ना कहीं चाय पीते थे. आज वह नहीं जा पाया तो शराफ़त मास्टर साहब, शर्माजी, सक्सेनाजी, जीतू राय सब उसके पास आ गये.

आते ही जीतू ने कहा — ''मुझे लगा तुम लड़के के पास जाने की ख़ुशी में हम सबको भूल गये.''

उसके अंतर्द्वंद्व में अंदर ही अंदर उबाल आ गया. चेहरे को शब्दों से सहज करते हुए उसने कहा — ''अभी तो नहीं लग रहा है कि मैं जा रहा हूं, बैठो चाय पीते हैं.''

उसके न जाने की संभावना के साथ वे सब जैसे अदृश्य उदासी से बाहर आते दिखे. शराफ़त ने कहा — ''तुम्हें जाने की ज़रूरत क्या है तरुण से ज़्यादा तुम्हारी चिंता करने वाले यहां हैं.'' उसकी आंखों में जैसे गीलापन उतर आया था.

शर्माजी बोले — ''भाई चाय जल्दी मंगवा लो आज सुबह की चाय में वैसे भी देर हो गयी है, चाय की तलब लग रही है.''

चाय पीते समय सब रोज़ की तरह अभ्यस्त ढंग से बातचीत का आनंद लेते रहे. सबको अपनी आगे की दिनचर्या में शामिल होना था अतः सब विदा लेकर चले गये. सबके जाने के बाद वह अकेलापन महसूस करने लगा. इस अकेलेपन से वह कनाडा के अकेलेपन की कल्पना करके घबरा गया और अंदर ड्राइंग रूम में आकर बैठ गया.

ड्राइंग रूम में तरुण की आदमकद तस्वीर लगी है तस्वीर देखकर ऐसा भ्रम होता है कि तरुण उसके सामने खड़ा है. शायद इसी भ्रम को बनाये रखने के लिए यह तस्वीर लगायी थी. भ्रम में आख़िर कब तक जीया जा सकता है. तरुण को बाहर अमेरिका में पढ़ाया था सोचा था कि यहां आकर उसका सफ़र आगे बढ़ायेगा पर उल्टा हुआ. पढ़कर जब तरुण वापस आया तो उसका नज़रिया बदल गया. न जाने क्यों उसे लगने लगा कि यहां के हालात में वह काम नहीं कर सकता है. उसका मानना था कि यहां कोई सिस्टम नहीं है. वह जब था तब भी यहां से असंतुष्ट रहता था. उसे न जाने क्यों लगता था कि जातिगत आधार पर उसे यहां कभी बराबरी का स्थान नहीं मिल सकता है. उसके दिमाग़ में बैठ गया था कि व चाहे जितना सक्षम बन जाये, चाहे जितनी योग्यता पैदा कर ले जाति के स्तरीकरण में उसका स्थान कभी बराबरी का नहीं हो सकता है.

उसने जीवन में रोटी से लेकर, सामाजिक सम्मान तक हर छोटी बड़ी चीज़ के लिए संघर्ष किया था इसलिए

उसने बहुत सी विषमताओं को आत्मसात कर लिया था. तरुण की परवरिश अलग माहौल में हुई थी. तरुण ने जीवन में किसी संघर्ष या अभाव का सामना नहीं किया था, उसके लिए समाज में मानसिक बराबरी का संघर्ष ही शायद संघर्ष था. जब तरुण ने पी. ई. टी. में टॉप किया था तो वह ख़ुश था उसे लग रहा था कि उसने अपनी योग्यता साबित की है और योग्यता के वर्चस्व में आगे आ गया है, पर वह दोस्तों के इस तर्क से इंकार नहीं कर पाया कि उसने फॉर्म आरक्षित कोटे में भरा था. किसी ने ताना भी कसा था श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए श्रेष्ठ मार्ग अपनाना चाहिए, आरक्षित कोटे से फॉर्म भरना मानसिक असुरक्षा का परिचय देता है. वह क्रुद्ध हो गया उसने कॉलेज़ तो ज़्वाइन किया पर वहां उसकी संवेदनशीलता ने उसे मानसिक अवसाद में ला दिया था.

उसने तरुण की स्थिति को देखते हुए तरुण को पढ़ने अमेरिका भेज दिया. तरुण पढ़कर आया तो कुछ सामान्य था शायद विदेश रहते-रहते देश के प्रति उसका प्यार बढ़ा था. वह रत्ना से शादी करना चाहता था. रत्ना का परिवार उसकी तुलना में कम आर्थिक स्थिति का था पर रत्ना के परिवार ने अपनी ऊंची जातीय सामाजिक स्थिति के आधार पर मना कर दिया. एक संघर्ष की स्थिति उत्पन्न हो गयी थी. रत्ना इस संघर्ष में तरुण के साथ थी पर वह संघर्ष से डर गया था. इस जातीय संघर्ष में उसे लग रहा था कहीं इतने संघर्षों के बाद बनायी ज़मीन उसके पैरों के नीचे से ना निकल जाये. उसने अपनी यह ज़मीन बहुत मेहनत से बनायी थी, इसके टूटने के डर से वह सहम गया था. उसने तरुण को समझाया, तरुण सहमत नहीं हुआ पर पिता की विवशता के कारण मान गया. तरुण नाराज़ था, नाराज़ी से कहीं ज़्यादा उसके अंदर निराशा और हताशा आ गयी थी. तरुण ने देश छोड़ लेने का मन बना लिया. इस बार वह असहमत था पर पुत्र की स्थिति को देखते हुए मान गया. तरुण जॉब ढूंढ कर कनाडा चला गया. उसे लगा था कि समय के साथ तरुण की नाराज़ी दूर हो जायेगी और वह वापस आ जायेगा पर ऐसा नहीं हुआ. उल्टा तरुण उस पर देश छोड़कर कनाडा आने का दबाव बनाने लगा.

अभी हफ़्ते भर पहले उसकी तरुण से फ़ोन पर बहस हो गयी थी. तरुण ने ग़ुस्से में कहा — ''वहां आपको क्या मिल रहा है राजनीति में इतने दिन से हैं आपको सिर्फ़ इसलिए टिकट नहीं मिला क्योंकि आपका चुनाव क्षेत्र आरक्षित नहीं है. आप भी शायद जानते हैं कि अनारक्षित सीट से यदि आप चुनाव लड़े तो आपको महज जातीय आधार पर ही हरा दिया जायेगा.''

उसे भी एक पल लगा कि तरुण यदि सही नहीं कह रहा तो ग़लत भी नहीं कह रहा है. वह यहां की सारी स्थितियों को स्वीकार करता है, शायद उसे ये बातें भेदभाव नहीं लगती हैं, उसने भी एक बार तो जैसे जाने का मन बना लिया था पर वह अब जैसे टूट रहा था.

मन बांटने के लिए वह दिनचर्या में दाख़िल हो गया. पूजा करने के बाद वह कुछ सामान्य महसूस करने लगा. आज पार्टी की मीटिंग थी. उसकी जाने की इच्छा नहीं हुई वह बेडरूम में आकर बिस्तर पर लेट गया. सोचा टी. वी. चालू किया जाये फिर उसने विचार त्याग दिया. वह अकारण ही टी.वी. स्क्रीन को देखने लगा. बंद टी. वी. के स्क्रीन पर उसे लगा जैसे जंगली जानवरों का झुंड सुरक्षित इलाक़े की तलाश में अभी भी भाग रहा है.

वह फिर जैसे अतीत में चला गया था. बरगद के पेड़ के नीचे रुका. काफ़िला उसे याद आने लगा. दिन भर सभी खेतों में फ़सल की कटाई करते. शाम पेड़ के नीचे खाना, पीना और सोना होता. उसे तो सिर्फ़ खाने और सोने से मतलब था. वह दिन भर धूप में घूमता रहता, इमली और बेर तलाशता रहता. स्कूल से मुक्त होकर यहां वह पूरी तरह मस्त था. यहां किस पर क्या गुज़र रही है उसे नहीं पता था.

फ़सल कटते ही काफ़िला पास के एक क़स्बे में चला आया. वहां खाली जगह पर बसेरा बन गया. सुरक्षा के लिए पालीथिन के अस्थाई टेंट बना लिये थे. यहां काम का अभाव था सभी का जीवन संघर्षमय था. उसे संघर्ष से कोई लेना-देना नहीं था. उसकी मस्ती अब आवारागर्दी में बदल गयी थी. वह छोकरों के साथ दिनभर शरारतें करता. छोटी-मोटी चोरियां करता. ठेले से टॉफ़ी, मूंगफली खाकर ख़ुश रहता. उसे लगता यहां आकर ज़िंदगी के सारे सुख हासिल हो गये. तभी दुनिया बदली, मां ने बीमारी में सरकारी अस्पताल में दम तोड़ दिया. मां के बाद वह जैसे अकेला हो गया, पिता से वैसे भी उसका ज़्यादा संवाद नहीं था. भावनात्मक रूप से वह अपने आपको असहाय महसूस करने लगा.

काम न होने से काफ़िला बिखरने लगा था. तभी प्रगट हुए करामात भाई, उन्होंने जैसे सबको जीवन दान

दिया. जिला मुख्यालय के पास खेतों में उनके ईंट भट्टों का व्यवसाय था. ज़रूरत मंद लोगों को मज़दूरी की दरकार थी उन्हें भी ज़रूरत मंद लोगों की ज़रूरत थी जो कम से कम मज़दूरी पर ज़्यादा से ज़्यादा काम करें. ईंटों के अस्थाई मकानों के बसेरों में ज़िंदगी कटने लगी. करामात मियां नेता थे. उन्होंने दूरदर्शिता के आधार पर सबको वोटर बनवा दिया. करामात मियां नगर पालिका अध्यक्ष का चुनाव जीते तो काफ़िले में ऐसी ख़ुशी थी जैसे उन्हें कोई पद मिल गया हो. करामात मियां ने उदारता दिखायी और उसके पिता को नगर पालिका में चौकीदार बनावा दिया. पिता के जीवन में स्थायित्व आ गया. संघर्षों की थकान ने उनकी यात्रा स्थगित कर दी पर उसकी आंखों में तो जैसे सपने उड़ने लगे थे.

उसे लगा कि जिस दिन से गांव से उसका सफ़र शुरू हुआ कभी रुका नहीं. उसके पिता के पांव थके तो सफ़र उसके पांवों में आ गया अब वह थक रहा है तो सफ़र तरुण के पांवों के साथ ज़ारी है.

फ़ोन की घंटी के साथ वह जैसे यात्रा से वापस लौट आया. पार्टी कार्यालय से फ़ोन आया, उसने बीमारी का बहाना बना दिया. तरुण सच कहता है जब तक यह क्षेत्र आरक्षित नहीं होगा उसे शायद ही पार्टी से टिकट मिलेगा. उसे लगता है पूरा देश दो हिस्से में बंट गया है, एक आरक्षित और दूसरा अनारक्षित. आरक्षित दुनिया और अनारक्षित हिस्से में जीने वाले दोनों लोगों के बीच भी एक बड़ी-सी खाई है. दोनों के एक दूसरे के प्रति तर्क हैं, एक दूसरे से विरोध है, एक दूसरे से नफ़रत है पर उसे लगता है, शायद दोनों एक दूसरे के पूरक हैं. यही सामंजस्य है. जातीय जनसंख्या के आधार पर उसका राजनीतिक अस्तित्व है और अनारक्षित लोग उसे इसलिए बर्दाश्त करते हैं क्योंकि इस संख्या की उन्हें अपने अस्तित्व के लिए ज़रूरत है. न जाने क्यों इस नग्न कटीले विचारों से वह अंदर आहत हो गया. जिन लोगों के साथ वह अपने पुत्र को छोड़कर इस शहर में रहना चाहता रहा था उनके प्रति एक कड़वाहट उसके मन में आ गयी.

वह आंखें बंद कर लेट गया. सोचने लगा कि संबंध कितने स्वार्थी होते हैं. स्वार्थ न हो तो शायद संबंध ही ना हों. संबंधों के स्वार्थ पर विचार करते–करते वह फिर अतीत की यात्रा पर निकल पड़ा. शायद पिताजी भी दादाजी को जब छोड़कर आये उसके बाद मरने की ख़बर मिलने पर ही गांव गये थे. जब लौटे थे तो उनके पास पिता को खोने की कसक कम अपनी ज़मीन पर ठाकुरों के कब्ज़ा कर लेने की कसक ज़्यादा थी. उन पलों की निरीहता ने ही शायद उसे ताकतवर होने की प्रेरणा दी थी. पिताजी हमेशा कोसते थे कि ठाकुरों के पास इतनी ज़मीन थी उनकी थोड़ी-सी ज़मीन छोड़ देते तो क्या चला जाता. पिताजी के मन से ज़मीन का मोह गया नहीं. उन्होंने संघर्ष किया. अंत में ठाकुरों ने पांच-दस हज़ार रुपये दे दिये. इसके बाद तो पिजाजी ने कभी गांव का ज़िक्र ही नहीं किया. शायद मुआवज़ा लेकर गांव से रिश्ता तोड़ लिया.

वह भी इन सबसे कहां अलग है? हालांकि पिताजी से उसके संबंध धीरे-धीरे सुधरते गये और आना-जाना बना रहा पर पिता ने अपना वज़ूद नहीं छोड़ा और उसके पास रहने नहीं आये. उसके पास आर्थिक रूप से कोई अभाव नहीं था फिर भी वह पिताजी के मरने के बाद पिताजी का मकान बेच आया था. पिताजी के साथ उनकी देखभाल के लिए सुकुवा शायद इस लालच में रहता था कि मकान उसे मिल जायेगा. जब वह मकान बेचने गया था सुकुवा ने उसकी ओर बहुत आशा भरी नज़रों से देखा था. वह अपना अधिकार या यों कहे कि लालच नहीं छोड़ पाया था. आते वक़्त सांत्वना के रूप में सुकुवा को वह पच्चीस हज़ार रुपये देकर आत्मगरिमा के साथ लौटा आया था. उसको आज यह सब याद करके लगा कि समाज की बहुत सी स्थितियां शायद विरासत में ही मिलती हैं, उसकी विरासत की वजह से सुकुवा का अधिकार और आशाएं उस दिन हार गयी थीं. उसके मन में ना जाने क्यों यह विचार आया कि शायद यही विरासत है जो अगली पीढ़ी में असमानता पैदा कर देती है, पर वह जैसे जानबूझकर इस विचार से किनारा कर गया.

वह पूरी तरह से भ्रमित हो चुका था. अनिर्णय की स्थिति में पलंग पर लेट गया. लेटे-लेटे उसे लगने लगा कि वह थक चुका है, वह अब आगे सफ़र ज़ारी नहीं रख सकता है. उसके मन में चल रही यात्रा की सारी तैयारियां स्थगित हो चुकी थीं. उसे अचानक ही लगा कि जैसे उसका सफ़र ज़ारी है पर वह अपने आगे के सफ़र को तरुण के पैरों के हवाले करके ठहर गया है.

राजगढ़ (व्यावरा),
म.प्र.- ४६५६६१
मो.: ९४२५९९२७५१/९१६५२०९९५१

प्रेम दीवानी

पेज १५ का शेष...

'वैसे शायद तुम समय से पहले इंडिया लौट आये वरना अमरीका से कोई जल्दी नहीं लौटना चाहता. क्या जल्दी लौटने की कोई ख़ास वजह थी?' कमलेश कुमार ने भी कहा.

'ओह नो, ऐसा कुछ नहीं था, मुझे वहां की क्लाइमेट सूट नहीं कर रही थी, इसलिए इंडिया वापिसी की रिक्वेस्ट की थी.' अचानक उसका चेहरा जैसे काला-सा पड़ गया था.

यह कैसा संयोग था, आज नीता जी जिस टैक्सी में बैठी हैं उसकी ड्राइवर विनायक मूर्ति के धोखे की शिकार है. उस धोखेबाज़ के झूठे प्यार को सच्चा प्यार मान कर अपने दिल में उसे बसाये बैठी है. यहां तक कि उसके पेरेंट्स से उनके पोते को मिलाने के लिए बेचैन है. नहीं, विनायक तुम्हें इस धोखे की भरपाई करनी ही होगी. मीरा को उसका अधिकार दिलाना ही होगा, पर कैसे? कितनी चालाकी से उसने शादी का कोई गवाह या सबूत नहीं छोड़ा है. नीता जी ने पक्का निश्चय कर लिया. विनायक को सजा दिलाये बिना नहीं छोड़ेंगी. कुछ सोच कर शांत स्वर में उन्होंने कहा —

'मीरा, उम्र और अनुभव दोनों में मैं तुमसे बड़ी हूं, अगर कोई सलाह दूं तो मानोगी?'

'ज़रूर, आप जो कहेंगी मेरी भलाई ले लिए होगी.' मीरा ने जवाब दिया,

'मुझे कहना है, जो तुम्हारी ज़िंदगी से चला गया, उसे भुला देने में ही समझदारी है. अब तुम्हें अपने बेटे के भविष्य की चिंता करनी चाहिए. उसे ख़ूब पढ़ा-लिखा कर एक योग्य इंसान बनाना तुम्हारा फ़र्ज है. तुम्हारे सामने अभी बहुत लंबी ज़िंदगी है, अगर राह में कोई अच्छा जीवन साथी मिल जाये तो उसे स्वीकार कर लेना क्योंकि हो सकता है बड़ा होने पर तुम्हारे बेटे को पापा की कमी महसूस हो.'

'आप ठीक कहती हैं, पर विनी ने मुझे मीरा कहा है, अगर मैंने शादी कर ली तो क्या विनी को धोखा देना नहीं होगा.' मीरा ने सवाल किया.

'नहीं, बिल्कुल नहीं, तुम्हारी स्थिति अलग है. मीरा ने विवाह नहीं किया था, उस पर उसकी संतान की ज़िम्मेदारी नहीं थी, एक बड़ी बहिन की तरह तुम्हें सलाह दी है. तुम मेरी बात पर गंभीरता से सोचना. कोशिश करूंगी अगर विनायक का पता मिल सका तो उसके बेटे के लिए जो सहायता करा सकी ज़रूर करूंगी,' दृढ़ निश्चय के साथ नीता जी के मन ने निर्णय ले लिया था.

'धन्यवाद, मैडम. आपकी बातों से मुझे बहुत हिम्मत मिली है.' शायद उसका स्वर भीग आया था.

'अगर समय मिला तो तुम्हारे बेटे से मिलने ज़रूर आऊंगी.' प्यार से नीता जी ने कहा.

कॉन्फ्रेंस हॉल आ गया था. कैब रोक, मीरा ने तत्परता से नीता जी के लिए कार का दरवाज़ा खोला था.

कार से उतरती नीता जी ने अपने मोबाइल में मीरा का चित्र लेकर प्यार से उसे गले लगा लिया. नीता जी के गले लगी मीरा विस्मित थी. शायद दोनों की पलकों पर अनजाने ही जल-कण छलक आये थे.

13819 NE 37th PL,
Bellevue, WA 98005, USA
Tel.: 0114256337679

ग़ज़ल

मो. शरीफ़ कुरेशी

लाज़िम था उसे जाना, बेशक वह चला जाता,
कब लौट के आयेगा, इतना तो बता जाता ।

वह छोड़ गया अपनी परछाई यहां वर्ना,
इस घर में अकेले तो, हमसे न रहा जाता ।

आग़ाज़े मोहब्बत में मामूल रहा उसका,
ख़्वाबों में वह आ जाता, नींदों से जगा जाता ।

रातों को हर आहट पर हम चौंक उठा करते,
झोंका कोई चुपके से ज़ंजीर हिला जाता ।

इतना तो करम करता तरसी हुई आंखों पर,
रस्ते में कहीं आते-जाते नज़र आ जाता ।

देखी हैं शरीफ़ उसकी फ़ुर्क़त में वे रातें भी,
बिखरा हुआ सन्नाटा कोहराम मचा जाता ।

१/९१, भूसामंडी,
फ़तेहगढ़ (उ. प्र.)-२०९६०१
मो. : ९०४४६७४७०१

रेगिस्तान में बारिश

राकेश भ्रमर

रुक-रुककर बारिश हो रही थी. दिन अभी शेष था, परंतु काले-काले मेघों के कारण दिन में ही रात का आभास हो रहा था.

राधिका खिड़की के पास खड़ी थी. उसकी आंखों में प्रकृति के सुहावने दृश्य सिमट आये थे. वह पेड़ों पर गिरती हुई बूंदों को देख रही थी. हवा चल रही थी. हवा के वेग से पत्तियों के साथ-साथ बारिश की बूंदें भी इधर-उधर डोल रही थीं. बिल्कुल उसके मन की तरह, जो आसमान में उड़ जाना चाहता था.

बग़ल के कमरे से खांसने की आवाज़ आयी. पिताजी को खांसी का दौरा पड़ा था. वे बीमार थे. इलाज चल रहा था, परंतु कोई लाभ होता दिखाई नहीं पड़ रहा था. शायद उनका अंतिम समय आ गया था, परंतु जब तक जीवन है, तब तक आशा का दामन नहीं छूटता.

राधिका चुपचाप बग़ल के कमरे से आ रही आवाज़ों को सुन रही थी. वह अपने हृदय के अंदर की आवाज़ें भी सुन रही थी. चारों तरफ़ ख़ुशियां बिखरी पड़ी थीं, परंतु उसके मन में कोई ख़ुशी नहीं थी. वहां सूखे रेगिस्तान-सी वीरानी थी. उसका मन सूखा था और आंखें गीली थीं. उसका मन रेगिस्तान की तरह था, जहां बरसों से वर्षा की एक बूंद भी नहीं गिरी थी. वह तप रही थी. क्या ऐसे ही तपती रहेगी. बारिश में भी... कैसा भाग्य लेकर पैदा हुई थी?

राधिका ने ध्यान से बग़ल के कमरे की आवाज़ों को सुना. मां ने पिताजी को पानी दिया था. गिलास के खनकने की आवाज़ आ रही थी. पिताजी की खांसी का जोर कम हो गया था.

''अरी, कहां मर गयी? यहां इनको खांसी का दौरा पड़ा है और यह अपने किसी यार की यादों में खोयी कमरे में छिपकर बैठी है.'' मां की तेज़ आवाज़ आयी. कर्कश आवाज़. राधिका मन ही मन भुनभुनायी... मां के मन में राधिका के बारे में सदैव कुविचार ही आते थे.

राधिका एक स्कूल में टीचर थी. सुबह जल्दी उठकर घर के सारे काम निपटाती थी. खाना बनाती थी, फिर स्कूल जाती थी. शाम को स्कूल से लौटकर फिर घर के कामों में जुट जाती थी. दिन-रात खटती थी, परंतु मां को उससे शिकायत बनी ही रहती थी. वह लड़की थी न! पूरा परिवार उसी की कमाई पर निर्भर था, परंतु मां की खरी-खोटी उसे ही सुननी पड़ती थी. बेटे से उनको कोई शिकायत नहीं थी. जबकि वह बेरोज़गार था.

मां दिन भर पिताजी की सेवा-टहल में लगी रहती थीं. पिताजी भी मां को अपने पास से टलने नहीं देते. कभी सो गये, तो भले मां घर का कोई छोटा-मोटा काम कर लेतीं, वरना राधिका को ही घर के सारे काम निपटाने पड़ते. कितनी भी थकी हो, वह 'न' नहीं कह सकती थी. तब भी मां कभी उससे प्यार के दो शब्द नहीं बोलतीं, उसके काम में हाथ नहीं बंटातीं. बचपन से वह इसी तरह घर के सारे काम करती आ रही थी.

वह इस घर की ऐसी नौकरानी थी, जिसको इस घर में काम करने की कोई तनख़्वाह नहीं मिलती थी, बल्कि वह बाहर से कमाकर लाती थी और इस घर का ख़र्चा चलाती थी. बापू की दवाई का ख़र्च, राशन का ख़र्च, छोटे भाई की दारू का ख़र्च और घर के तमाम सारे छोटे-मोटे ख़र्च. वह न हो तो इस घर के लोग भूखों मर जायें. वह सबकी पालनहार थी, परंतु उसकी भावनाओं की किसी को चिंता-

परवाह नहीं थी.

मां की कड़ी बात सुनकर राधिका के मुंह में कसैलापन आ गया. मन मारकर वह पिताजी के कमरे में गयी. बाहर की बारिश की फुहारों से उत्पन्न ख़ुशी उसके मन के अंदर मर गयी थी. मां पिताजी की पीठ सहला रही थीं. वह चुपचाप एक कोने में खड़ी हो गयी. मां उसको देखकर भुनभुनायीं — ''कितनी देर से खांस रहे हैं, तुझे सुनाई नहीं देता. हाय राम, घर में जवान बेटी है, परंतु इसको मां-बाप की तनिक भी चिंता नहीं है. मैं न रहूं तो तेरे बापू तो एक दिन भी ज़िंदा न रहें. इसी दिन के लिए तुझे पढ़ा-लिखाकर बड़ा किया, नौकरी करवायी, कि तू हम सबको ज़िंदा मार डाले.'' मां की ऐसी ही आदत थी. बुढ़ापे का प्रभाव उन पर हावी होने लगा था. अच्छे-बुरे में भेद नहीं कर पातीं. उनकी निग़ाह में इस घर में उनका, उनके पति और बेटे के अलावा किसी का अस्तित्व नहीं था. वह किसी और के बारे में न तो सोचती थीं न उनको और कुछ सूझता था. बेटी ही इस घर के लिए सब कुछ कर रही थी और बेटी के ऊपर ही वह अपना सारा ग़ुस्सा, खीझ और लाचारी प्रकट करती थीं.

राधिका का छोटा भाई जवान था. उससे केवल दो साल छोटा... परंतु आवारा, निकम्मा और शराबी. लड़-झगड़कर मां से पैसे ले जाता था और शराब पीकर देर रात गये घर लौटता था. और खाना खाकर सो जाता था. वह कोई काम नहीं करता था, परंतु मां उसे कुछ नहीं कहतीं. वह उनकी आंखों का तारा था.

राधिका सोच रही थी — मैं ही क्या-क्या करूं? किस-किसकी परवाह करूं? मैं क्या कोई मशीन हूं? मेरी कोई भावनाएं नहीं हैं कोई इच्छा और चाहत नहीं है? मैं बेटी होकर बेटे का फ़र्ज निभा रही हूं, परंतु क्या कभी मां और बाप ने अपने फ़र्ज के बारे में सोचा है? मैं तीस साल की हो चुकी हूं, अभी तक मेरी शादी के बारे में कुछ नहीं सोचा. मैं ही अपने मुंह से कुछ कहूंगी तो करेंगे? नहीं, ये क्यों करने लगे मेरी शादी. मैं इनका बैंक जो हूं. विवाह करके चली गयी तो बैंक में इनका खाता नहीं बंद हो जायेगा. तब इन सबको एक सूखी रोटी के भी लाले पड़ जायेंगे. कहां से पिताजी का इलाज करवायेंगे? राशन-पानी का पैसा कहां से आयेगा?

वह सोचती रही — ये लोग तो एक दिन मरकर चले जायेंगे, तब अकेली क्या मैं भाई की सेवा के लिए रह जाऊंगी इस घर में? मेरा कौन होगा? मेरा बुढ़ापा कैसे कटेगा? इन लोगों ने तो मेरे आसरे अपना जीवन सुखपूर्वक व्यतीत कर लिया? परंतु मेरे बारे में कभी सोचा है? बाद में मेरा क्या होगा? इनके मरने के बाद क्या भाई को कमाकर खिलाती रहूंगी? मेरा अपना घर-परिवार, बाल-बच्चे नहीं होंगे? इन सबके प्रति ज़िम्मेदारी निभाते हुए मैंने कभी अपने

१ ज़नवरी १९५६, कहिंजर, रायबरेली (उ. प्र.)
इलाहाबाद वि. वि. से प्राचीन इतिहास में एम. ए. (१९७८).

: प्रकाशन :
देश की जानी-मानी पत्र-पत्रिकाओं में छः सौ से अधिक रचनाएं, यथाः कहानियां, कविताएं, ग़ज़लें, लेख आदि प्रकाशित. यदा-कदा अंग्रेजी में भी लेखन.

: प्रसारण :
दूरदर्शन लखनऊ तथा आकाशवाणी रामपुर, जबलपुर, शहडोल, वाराणसी, नयी दिल्ली और मुंबई से रचनाओं का प्रसारण एवं पाठ.

: प्रकाशित कृतियां :
१. हवाओं के शहर में, जंगल बबूलों के, रेत का दरिया और शबनमी धूप (ग़ज़ल संग्रह), २. उस गली में, डाल के पंछी, ओस में भीगी लड़की, काले सफ़ेद रास्ते और पीला चांद (उपन्यास) । ३. अब और नहीं, सांप तथा अन्य कहानियां, प्रश्न अभी शेष है, आग बुझने तक, मरी हुई मछली, वह लड़की, उनका बेटा और उसे जल्दी थी (कहानी संग्रह), ४. कुछ कांटे, कुछ मोती (निबंध-लेख संग्रह) ५. दीमक, सांप और बिच्छू (व्यंग्य संग्रह), ६. प्राची की ओर (संपादित ग़ज़ल संग्रह), ७.उसके आंसू (लघुकथा संग्रह) ८. अम्मा क्यों रोयी (कविता संग्रह).

: संप्रति :
प्राची मासिक का संपादन एवं स्वतंत्र लेखन साहित्यिक गतिविधियां. 'प्राची' नामक एक अव्यावसायिक साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक मासिक पत्रिका का संपादन.

बारे में नहीं सोचा, वरना कितने अच्छे-अच्छे लड़के हाथ धोकर मेरे पीछे पड़े थे. अभी भी पड़े हैं, परंतु मैं मां-बाप की नाक नहीं कटाना चाहती हूं. इज़्ज़त और मर्यादा का दामन पकड़कर बैठी हूं. कभी तो इनके मन में मेरे प्रति प्रेम और स्नेह का भाव जाग्रत होगा.

खीझती हुई वह मां को परे हटाकर पिताजी की पीठ सहलाने लगी. उन्हें अब कुछ आराम मिल गया था. पिताजी ने स्नेह से कहा, ''बेटी तू नहीं होती, तो आज हम ज़िंदा नहीं रहते.'' उनकी सांस अब संयत थी.

उसने कुछ नहीं कहा.

पिताजी ने आगे कहा, ''बेटी तेरी उम्र हो गयी है. सोचता हूं, मेरे जीते-जी तू विदा होकर अपनी ससुराल चली जाये, वरना बाद में भाई तेरी दुर्गति कर देगा.''

''कहां से कर देंगे शादी? इस घर में कोई ख़जाना गड़ा है?'' मां की तल्ख आवाज़ कमरे में नगाड़े की आवाज़ बनकर उभरी. राधिका का हृदय ऐंठकर रह गया. मां ने आगे कहा, ''हमारे हाथ में क्या है? तुम ने अपने जीवन में जो कुछ कमाया, वह खाने भर को पूरा पड़ा, बस. जो बचा, वह बेटी-बेटे की पढ़ाई-लिखाई में लगा दिया. अब इस बेटी के सिवा हमारे पास और क्या है? वही हमारा सहारा है. जब तक जीवित है, वह हमारी है. हमारे मरने के बाद वह जो चाहे करे.'' वे नाक सिकोड़ती हुई दूसरी तरफ़ देखने लगीं.

मां किसी की दुश्मन नहीं होती. अपनी संतान की तो कभी नहीं, परंतु स्वार्थ माता-पिता को अंधा और बहरा दोनों बना देता है. राधिका की मां अपने नालायक बेटे को सही रास्ते पर लाने के बजाय अपनी बेटी का ही जीवन नर्क बनाये दे रही थीं. कोई उनको कैसे समझाता कि बेटी सही उम्र में ब्याहकर अपने घर चली जाय, तो इससे बड़ा पुण्य मां-बाप के लिए और कोई नहीं होता.

''उसकी उम्र बढ़ रही है. वह कोई अब जवान नहीं है, प्रौढ़ हो रही है.'' पिताजी ने धीमे स्वर में प्रतिवाद किया.

''हम भी कोई अमृत फल खाकर नहीं आये हैं. एक न एक दिन मर जायेंगे. तब उसका जो मन होगा, कर लेगी.'' मां के स्वर की तल्खी बरकरार थी.

''उससे पहले उसे अपने घर विदा कर दो, हम भी बेटी के ऋण से मुक्त हो जायें.'' पिता ने बहुत सधी आवाज़ में कहा.

''पहले आपकी सेहत ठीक हो जाये, फिर सोचेंगे.'' मां ने बात ख़त्म कर दी.

राधिका अच्छी तरह जानती थी, अपने जीते-जी मां उसकी शादी नहीं होने देने वालीं. वह भूखों नहीं मरना चाहतीं. अपने से ज़्यादा उन्हें अपने बेटे की चिंता थी. उसे कोई तकलीफ़ हो, मां बर्दाश्त नहीं कर सकती थीं.

''मैंने कितनी बार कहा. मोहन से बात चलाओ. भला लड़का है, वह राधिका को पसंद कर लेगा, परंतु तुम कुछ सुनती ही नहीं हो.'' पिताजी ने बात आगे बढ़ायी. पहले भी कई बार वह यह बात कह चुके थे, परंतु मां ने हर बार टाल दिया.

''सुन लूंगी. जिस दिन भगवान हमारी सुन लेगा, उस दिन आपकी भी सुन लूंगी.'' मां के स्वर में टालनेवाला भाव था.

''बेटे को समझा-बुझाकर किसी सही रास्ते पर लाओ. ऐसे कब तक चलेगा. मुझसे बेटी का दुख देखा नहीं जाता. वह कितना उदास रहती है.''

राधिका चुपचाप पिताजी को बिस्तर पर लिटाकर अपने कमरे में आ गयी. मां ने उसके पीछे क्या कहा, उसने नहीं सुना. वह सुनना भी नहीं चाहती थी.

बाहर अभी तक बारिश हो रही था. उसकी आंखों से भी एक बारिश हो रही थी.

पिताजी को जब भी खांसी का दौरा पड़ता या उनकी तबीयत बिगड़ने लगती, उन्हें लगता, अब उनका अंतिम समय आ गया है. तब वह राधिका के बारे में चिंता व्यक्त करने लगते. उसकी शादी के बारे में बात करते, परंतु मां उनकी एक नहीं सुनतीं. वह किसी की नहीं सुनतीं.

बेटा लाख ग़लती करे, परंतु वह बेटे को कुछ नहीं कहतीं और बेटी को कोसती रहतीं, जैसे उसके बिगाड़ने में उसका ही हाथ था. वह मां के लाड़-प्यार में बिगड़ा था. बचपन से उसकी हर सुख-सुविधा का मां ने ख़्याल रखा. बिना काम के भी उसे पैसे देती रहीं. उसका मन पढ़ाई में नहीं लगता था, सदा परीक्षा में अंक कम लाता था, कभी फेल हो जाता था. तब उसे डांटने के बजाय, मां उस पर लाड़-प्यार उड़ेलती हुई कहतीं, ''कोई बात नहीं बेटा, अगली बार मेरा सोना बेटा अच्छे अंक लेकर पास होगा.'' परंतु उनका सोना बेटा कभी चांदी भी नहीं बना. अब तो मिट्टी बनकर रह गया था. सारी बुरी लतें उसके पास थीं,

परंतु कमाई एक पैसे की नहीं.

आजकल पता नहीं कहां रहता था. रात में भी घर नहीं आता. एक दिन राधिका को किसी ने बताया था कि किसी विधवा लड़की के साथ उसका चक्कर चल रहा था, और जिस दिन घर नहीं आता, रात में उसी विधवा औरत के घर में रुक जाता था. उसने उस विधवा औरत को नहीं देखा था. घर में किसी को पता नहीं था. भाई ने किसी को बताया भी नहीं था. राधिका ने भी मां को नहीं बताया. बताती तो मां उसी के ऊपर लांछन लगा देतीं कि वह अपने भाई को बदनाम कर रही थी; ताकि वह किसी के साथ भाग जाये और कोई उसे कुछ न कहे. परंतु वह ऐसा नहीं कर सकती थी.

बाहर का गेट खुलने की आवाज़ आयी. इस आवाज़ के साथ ही उसके हृदय में भी एक आहट हुई. उसका मन मयूर नाच उठा. वह जानती थी, कौन आया होगा? वह रोज़ आता था. उसने घड़ी की तरफ़ देखा. छह बज रहे थे. वह इसी वक़्त आता था. वह पिताजी का हाल-चाल पूछने के लिए आता था. परंतु मां उसे पसंद नहीं करतीं. वह डरती थीं कि वह राधिका को अपने प्रेम-जाल में फंसाकर उसे दूर देश उड़ा ले जायेगा. परंतु वह इतना संकोची था कि उसने राधिका से आज तक कभी बात नहीं की.

परंतु उसकी आंखों की भाषा वह समझती थी. उसमें राधिका के लिए असीम प्यार था. वही प्यार जो एक प्रेमी की निग़ाहों में अपनी प्रेमिका के लिए होता है. वह उसे चाहता था, परंतु व्यक्त नहीं करता था. बहुत संकोची था. राधिका भी तो संकोची थी. कभी उसकी तरफ़ देखकर मुस्करायी तक नहीं. कैसे मुस्कराती, पिताजी और मां के सामने. मां उसे खा न जातीं.

मां का बस चले तो मोहन को अपने घर में न आने दें, परंतु पता नहीं क्या सोचकर पड़ोसी होने का धर्म निभा लेती थीं. संभवत: इसलिए कि वह बहुत सीधा था और पिताजी उसे पसंद करते थे. उससे बातें करके पिताजी का बीमार मन चंगा हो जाता था. इसीलिए मां उसे कुछ नहीं कहतीं, परंतु वह यह कोशिश अवश्य करतीं कि राधिका उसके सामने बिल्कुल न निकले. अगर पड़े भी तो दोनों आपस में बात न करने पायें. जब मोहन उसके घर आता, तब उसके लिए चाय मां ही बनातीं. वह राधिका को बुलाती भी नहीं.

वह चाहे तो कोई बहाना बनाकर पिताजी के कमरे में जा सकती थी, एक नज़र मोहन को देख सकती थी. बस, देखना ही उसके भाग्य में था. एक चातक की तरह वह बस चांद को ताकती रहती थी.

मन में मां का भय था, किंतु आज उसने अपने मन के अंदर साहस का संचार किया. वह अपनी आकांक्षाओं को दबाना नहीं चाहती थी. कहां तक भय के साये में जीवन व्यतीत करती रहे. वह अपने कमरे से निकलकर पिताजी के कमरे में चली गयी.

मां के मन में जो होगा, कह लेंगी. कहां तक बर्दाश्त करे राधा? कितने प्रतिबंधों के बीच रहे?

मोहन पिताजी से बातें करने में मशगूल था. दोनों की निग़ाहें पल भर के लिए मिलीं और फिर झुक गयीं. मां ने ग़ौर से उन दोनों की तरफ़ देखा. उन्हें राधिका पर ग़ुस्सा आया. बिना बुलाये क्यों आ गयी? मुंह बनाकर उसे टालने के लिए कहा, ''जाओ, चाय बनाकर लाओ.'' और वह मोढ़ा खींचकर पति के सिरहाने बैठ गयीं, ताकि एक साथ मोहन और राधिका दोनों की हरकतों पर नज़र रख सकें.

मोहन बेवकूफ नहीं था. मां के सामने ऐसी कोई हरकत न करता, जिससे उन्हें शक़ हो कि राधिका के प्रति उसके मन में कोमल भाव थे. मोहन के भोलेपन पर राधिका मन ही मन मुस्कुरायी.

चाय बनाते हुए वह मन ही मन सावन का एक गीत गुनगुनाने लगी. वह अपने मोहन के लिए गीत गा रही थी. उसकी टेर मोहन तक अवश्य पहुंच रही होगी!

मोहन सौम्य और सरल था. सीधा स्वभाव था उसका. राधिका के मन को भा गया था. लेकिन दोनों के बीच आज तक कोई बात नहीं हुई थी. राधिका मां के डर से बात नहीं करती थी. वह किससे डरता था, पता नहीं.

लगभग एक साल से उनके पड़ोस में रह रहा था, कुंवारा था. यह बात उसने पिताजी को बतायी थी. उसने सुना था. वह दूर किसी गांव का रहनेवाला था. यहां किसी सरकारी ऑफ़िस में तृतीय श्रेणी का कर्मचारी था. कोई ज़िम्मेदारी नहीं थी. चाहे तो अपनी मर्जी से विवाह कर सकता था. परंतु अब तक ब्याह नहीं किया था. क्या पता राधिका के लिए रुका था? संयोग में यही होगा?

चाय तैयार होते ही मां किचन में आ गयीं. उन्होंने ख़ुद चाय छानी और कप-प्लेट लेकर कहा, ''तुम अपने

कमरे में जाओ.'' यह आदेश था. राधिका मां के हुक्म की अवहेलना नहीं कर सकती थी?

बारिश और तेज़ हो गयी थी. राधिका का मन बारिश में भीग रहा था.

□

घर में सभी लोग दु:खी थे. बस मां दु:खी नहीं थीं. राधिका के भाई ने अभी-अभी घर आकर अपने ब्याह के बारे में बताया था. पिताजी की सांस फूलने लगी थी. वह बेटे की बात बर्दाश्त नहीं कर पा रहे थे. सांसों को संयत करने का प्रयास करते हुए कहा, ''तुम शादी करोगे? काम के न काज के, दुश्मन अनाज के. कहां से खिलाओगे उसे? ख़ुद तो दूसरों के टुकड़ों पर पल रहे हो. शरम नहीं आती?'' कहते-कहते पिताजी की सांस और ज़्यादा फूल गयी.

राधिका सन्न-सी मूक खड़ी थी. वह मां-बाप की बड़ी लड़की थी. वह कमा रही थी, परंतु आज तक उसने मां-बाप से अपनी शादी की बात नहीं की थी. भाई छोटा था, बेरोज़गार था, निकम्मा और शराबी था. और उसे घर बसाने की सूझ रही थी. और मां ख़ुश थीं. कैसी विडंबना थी!

मां ने ख़ुशी से चहकते हुए कहा, ''आपकी जान क्यों सांसत में है? बेटा जवान हो चुका है. अब नहीं तो कब शादी करेगा?''

''शादी के लिए जवान है तो कमाने के लिए क्यों नहीं? कहां से खिलायेगा बहू को और ख़ुद कहां से खायेगा?'' पिताजी को खांसी का दौरा पड़ गया. राधिका उनकी तरफ़ लपकी और उन्हें बैठने में मदद की. उसने इशारे से पिताजी को मना किया कि वह कुछ न कहें. उनकी खांसी उभर आयेगी.

अभी मां को पिताजी की फिक्र नहीं थी. वह बेटे के बारे में चिंतित थीं.

''हम लोग भूखों तो नहीं मर रहे? जहां चार जन खा रहे हैं, पांचवां भी खा लेगा. जहां दो रोटी बनती हैं, वहां एक अतिरिक्त व्यक्ति के खाने के लिए कुछ न कुछ बच जाता है. बेटे की बहू अपना भाग्य साथ लेकर आयेगी. वह किसी दूसरे के भाग्य से नहीं खायेगी.'' मां की आवाज़ में दर्प और घमंड भरा था. वह किसी की बात नहीं सुनेंगी. राधिका जानती थी. पिताजी भी जानते थे.

''हां, बेटी के जीवन को नरक बनाकर तुम लोग अपनी ख़ुशियों की झोली भरती रहो.'' पिताजी ने निराश भाव से कहा. वह केवल कह सकते थे.

बेटे ने अकड़ के साथ बताया कि एक विधवा औरत से मंदिर में विवाह करने के बाद उसे घर लाना चाहता था. बस बताने आया था. शाम तक उसे लेकर आ जायेगा.

और वह अपनी पत्नी को लिवाने के लिए चला गया. मां ने थाली में सिंदूर, अक्षत और दीप रखकर सजा लिया. वह बहुत ख़ुश थीं. उन्होंने पड़ोस की तीन-चार औरतों को मंगल-गीत गाने के लिए बुला लिया और उनके साथ बरामदे में खड़ी होकर बेटे-बहू की प्रतीक्षा करने लगीं.

राधिका अपने कमरे से बाहर नहीं निकली, लेकिन कान लगाकर ध्यान से बाहर की आवाज़ें सुन रही थी.

कुछ देर बाद गेट पर रिक्शा रुकने की आवाज़ आयी. मां पड़ोसनों के साथ गेट पर पहुंच गयीं. बेटा अपनी पत्नी के साथ रिक्शे से उतरा और सबने मंगल-गान प्रारंभ कर दिया. गानों की आवाज़ उसके कानों में पड़ रही थी, परंतु वह उस गाने से ख़ुश होने के बजाय अपने भाग्य को रो रही थी.

राधिका के भाग्य में क्या रोना ही लिखा था? ऐसा तो नहीं हो सकता. कोई भी लड़की इतनी अभागिन नहीं हो सकती. सभी लोग अंदर आ गये थे. फिर भी राधिका अपने कमरे से निकलकर भाई के कमरे में नहीं गयी. अपनी भाभी को नहीं देखना चाहती थी. वह किसी को भी नहीं देखना चाहती थी.

राधिका के मन में विद्रोह के बीज उगने लगे. उसने कमर कस ली. अब समर पर निकलना शेष था.

बाहर झमाझम बारिश हो रही थी. दूर कहीं से कजरी की आवाज़ आ रही थी. बड़ी प्यारी आवाज़ में कोई विरही गा रही थी —

रिमझिम बरसै बदरिया, घरवा ना श्याम संवरिया,
जबसे चढ़ल सखी सावन महिनवा,
घरवा ना श्याम संवरिया
रहि-रहि पड़ेला फुहरवा, घरवा ना श्याम संवरिया
घेरि-घेरि आवे सखी कारी रे बदरिया,
घरवा ना श्याम संवरिया
रहि-रहि पड़ेला फुहरवा, घरवा ना श्याम संवरिया.

राधिका का मन रो पड़ा.

वह बार-बार घड़ी देख रही थी. उसे बेसब्री से किसी का इंतज़ार था. भाई के कमरे से आ रही आवाज़ों से उसे

कोई लेना-देना नहीं था. ये आवाज़ें उसके लिए मर चुकी थीं. उसे बस एक और आवाज़ का इंतज़ार था. वह आवाज़ अभी थोड़ी देर में उभरेगी और उसके मन के अंदर प्रवेश कर जायेगी. कभी तो उसका इंतज़ार ख़त्म होगा.

कोई भी इंतज़ार अंतहीन नहीं होता.

अचानक उसने पिताजी के कमरे से आती हुई आवाज़ें सुनीं. शायद मोहन आ गया था. पिताजी उससे कह रहे थे — ''देखा, मोहन वह नालायक किसी बेहया रंडी को घर में उठाकर ले आया है. उसकी मां कितनी ख़ुश है. उसे अपनी जवान बेटी के जीवन की कोई चिंता नहीं है, परंतु अपने नालायक बेटे के लिए मर रही है.'' पिताजी की आवाज़ में ग़ुस्सा भरा था.

मोहन की धीमी आवाज़ सुनायी पड़ती, ''क्या वह कोई लड़की घर में लाया है.''

''हां, कोई विधवा है. कहता है, मंदिर में उससे शादी कर ली है. इस तरह कोई शादी-ब्याह होता है. न मां-बाप की मर्ज़ी, न इच्छा. न कोई बाजा-बाराती, न कोई रस्म निभायी गयी. इस तरह कैसे कोई लड़की किसी लड़के की ब्याहता हो सकती है. बताओ, ऐसा भी कहीं दुनिया में होता है.''

मोहन चुप. उसकी कोई आवाज़ सुनायी नहीं पड़ी.

''बेटा, मोहन, आज मेरा धैर्य चुक गया है. मैं तुमसे कहता हूं, मेरे जीवन का कोई भरोसा नहीं, परंतु यह डायन अभी बहुत दिन ज़िंदा रहेगी. वह अपने बेटे के साथ मिलकर मेरी बेटी का जीवन नर्क बना देगी. तुम राधा को लेकर कहीं भाग जाओ, या दो गवाहों के समक्ष किसी मंदिर में उसके साथ विवाह कर लो. मैं तुम्हें इसकी इज़ाजत देता हूं. मैं राधिका का पिता हूं. मैं जानता हूं, तुम्हारे मन में उसके लिए कुछ है, और तुमको देखकर उसके चेहरे पर भी लाज की लाली दौड़ जाती है. यही तो प्यार है. तुम दोनों मेरे मरने का इंतज़ार नहीं करना, उसके पहले ही ब्याह कर लेना, वरना मेरी बेटी घुट-घुटकर मर जायेगी. मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है. ज़िंदा रहा तो फिर आशीर्वाद दूंगा.'' पिताजी की आवाज़ भीग-सी गयी. आज मां उनके पास नहीं थीं, इसीलिए उनको अपने मन की बात मोहन से कहने का अवसर मिल गया था.

राधिका के भाग्य का निर्णय उन्होंने कर दिया था.

राधिका का दिल बेतहाशा धड़क उठा. पिताजी के लिए उसके मन में आदर-सम्मान था. आज श्रद्धा से उनके लिए उसका सिर झुक गया. काश, वह बीमार न होते. कुछ करने के लिए समर्थ होते, तो आज वह कुंवारी न बैठी रहती. भले घर की लड़कियां तीस बरस की उमर में कुंवारी नहीं बैठी रहतीं.

फिर उसने पिताजी के कमरे से कोई आवाज़ नहीं सुनी. संभवत: दोनों गुपचुप कोई मंत्रणा कर रहे थे,

दिया-बत्ती जलने के पहले ही पड़ोस की औरतें अपने-अपने घर चली गयीं. अब मोहन भी बाहर निकलने वाला था. मां अपने बेटे-बहू के साथ उसके कमरे में ख़ुशियां मना रही थीं. बहू पाकर मां बौरा गयी थी. अब उन्हें अपने पति की भी कोई परवाह नहीं थी. बेटी की भी नहीं कि वह कहीं भाग जायेगी.

बाहर बारिश का जोर उसी तरह तेज़ था. मोहन बाहर निकल रहा था. आज राधिका उसे घर के अंदर दिखायी नहीं पड़ी. वह उदास था. बरामदे के कोने में रखा अपना छाता उठाकर उसने बाहर क़दम बढ़ाया. गेट के पास कोई खड़ा था. वह चौंककर देखने लगा. वह पास आया. बिजली की रोशनी में उसने देखा — एक युवा नारी गेट से लगी खड़ी भीग रही थी. उसके सिर से पानी की धार बहकर उसके बदन के चारों तरफ़ गिर रही थी. उसके वस्त्र उसके बदन से चिपक गये थे, और वह एक सुघड़ मूर्ति की तरह लग रही थी. वह भीग रही थी, परंतु पानी की तेज़ बौछारों से बचने का कोई उपक्रम नहीं कर रही थी. उसके पास कोई छाता नहीं था.

मोहन ने ध्यान से देखा, अरे, यह तो राधा थी. उसका हृदय अनायास वेग से धड़कने लगा. वह जल्दी से भागकर उसके पास गया. फिर ठिठककर खड़ा हो गया. उसके मन में संकोच उभरा. मन में पीड़ा की एक कसक तैर गयी. आज तक उसने राधिका से कभी कोई बात नहीं की थी. आज करेगा? वह हिचक रहा था. राधिका भी हिचक रही थी, परंतु वह भीग रही थी. उसे भीगना ही चाहिए. वह बहुत प्यासी थी.

''आप! यहां? ऐसे क्यों भीग रही हैं?'' आख़िर उसकी ज़ुबान पर पड़ा ताला खुल गया. राधिका का मन खिल गया. सुबह के गुलाब की तरह, सुगंधित, सुंदर. उसने अपनी बेचैन निग़ाहों को उसके चेहरे पर टिका दिया. उन आंखों में बहुत प्यास थी.

''भगवान का लाख-लाख धन्यवाद! आपकी ज़ुबान

तो खुली. मैं अगर ऐसे न भीगती, तो शायद आप कभी ज़ुबान नहीं खोलते और हम दोनों सावन में भी प्यासे रह जाते, नि:शब्द!'' राधिका भी मुखर हो उठी. चुप्पी सदा किसी को ख़ुशियां प्रदान नहीं करती. जब किसी की ख़ुशियों का दमन किया जाता है, तो वह अनचाहे प्रतिबंधों को तोड़ता है. वह अपने सुख के लिए जीवन के किसी न किसी मोड़ पर अपने सारे संकोच और लज्जा का त्याग करके साहसिक क़दम उठाता है. वह ख़ुशियों के लिए लड़ता है, और जीतता है. राधा और मोहन भी आज अपने जीवन की लड़ाई लड़ रहे थे. वे जीतेंगे. उनके मन में सच्चाई थी.

''आप घर के अंदर चलिए. आपकी तबीयत ख़राब हो जायेगी.'' मोहन के स्वर में मनुहार थी.

''तबीयत तो अब ठीक हुई है. अब यह कभी ख़राब नहीं होगी.'' राधिका के स्वर में लज्जा थी, लेकिन उसकी वाणी में दृढ़ता थी. ऐसी दृढ़ता जो अंधेरे में रोशनी दिखाती है.

''ऐसी बारिश में भीगना ठीक नहीं है. आप छाते के नीचे आ जाइए.'' अपने छाते को उसकी तरफ़ बढ़ाते हुए मोहन ने कहा.

वह हंसी. उसकी हंसी में मुग्धता थी, ''फिर तो आप भी भीग जायेंगे. आपका छाता छोटा है. हम दोनों के लिए कम पड़ जायेगा.'' उसकी हंसी की खनक में मोहन डूब गया.

मोहन को लगा, राधिका के स्वर में मधुर व्यंग्य का भाव था. वह हिचकते हुए बोला, ''अगर आपके मन में कोई द्विविधा और संकोच न हो, तो इस छाते में दो लोगों के लिए पर्याप्त जगह है. हम कभी नहीं भीगेंगे. आप आइए तो सही.'' उसकी वाणी में अनुराग भरा अनुरोध था.

''लेकिन आज मुझे भीगना है, आपके साथ!'' वह कोयल की तरह कूकी.

''तो फिर ठीक है, जैसी आपकी इच्छा!'' वह आगे बढ़ा.

''सच! आप अपने वचन से मुकरेंगे तो नहीं.'' वह अपने होंठों को दांतों से काटकर मुस्करायी.

''नहीं, कभी नहीं, मैं आपके पिताजी को वचन देकर आया हूं.''

''उन्हें आप वचन नहीं देते, तो भी आज मैं आपको बिना भीगे नहीं जाने देती.'' उसने अपना दायां हाथ बढ़ाकर मोहन के हाथ से उसका छाता ले लिया और सावधानी से उसे मोड़कर गेट के सहारे रख दिया. फिर बोली, ''अब इस छाते की हमें कोई आवश्यकता नहीं है. आज बस हमें भीगना है.'' वह हौले से आगे बढ़ी. मोहन का हाथ उसके हाथ की तरफ़ बढ़ा और दोनों के हाथ आपस में गुंथ गये.

दोनों भीग रहे थे. यह बादलों की बारिश नहीं थी. यह उनके प्यार की बारिश थी. यह रेगिस्तान में होनेवाली बारिश थी, जो बरसों बाद उनके जीवन में आयी थी. इस बारिश से उनके मन के रेगिस्तान में नखलिस्तान खिलेगा. उसमें रंग-बिरंगे, सुंदर और सुगंधित फूल होंगे, जो उनके जीवन को महका देंगे.

दूर कहीं से कजरी की आवाज़ अभी भी आ रही थी:

'दिल में धीर धरो ये प्यारी, इक दिन अइहैं सजनवा तुहार.'

७, श्री होम्स, कंचन विहार,
बचपन स्कूल के पास, लामती,
विजयनगर, जबलपुर (म.प्र.)-४८२००२
मो. : ९९६८०२०९३०

लघुकथा

दर्पण

योगेंद्र शर्मा

वह आइने के सामने अपने बाल संवार रहा था. तभी प्रतिबिंब ने उससे पूछा —

'क्यों भइये, ये चेहरे पर बारह क्यों बज रहे हैं?'

'दुखी हूं, यार. आज की परिस्थितियों से दुखी हूं. आमदनी कम... ख़र्च ज़्यादा.'

'अच्छा यदि आमदनी बढ़ गयी. परिस्थितियां अच्छी हो गयीं, तो सुखी हो जाओगे?'

'हां-हां... हो जाऊंगा.'

'तो आज दुखी हो ताकि कल सुखी हो सको. यह बताओ कल का कुछ पता है?'

'नहीं कल का क्या पता...?'

'बड़े मूर्ख हो, यार कल के लिए आज का बलिदान.' प्रतिबिंब ठहाके लगाने लगा और वह घबरा कर आइने के सामने से हट गया था.

३/२९ सी, लक्ष्मीबाई मार्ग,
रामघाट रोड, अलीगढ़.
मो.: ९८९७४१०३२०

कविता

गाएं

✍ डॉ. दिनेश श्रीवास्तव

हे महामानव
हे अमृत के पुत्रों,
अवसर मिले तो नचिकेता से पूछना
कि क्यों उसके पिता वाजश्रवा
अपनी बूढ़ी, बांझ, अंधी,
और बीमार गाएं
दान कर रहे थे?
फिर पूछना हरिशचंद्र से
कि कैसे अजीगर्त
हज़ार गायों के बदले
अपना बेटा शुनःशेप
देने को राजी हो गये थे
बलि के लिए —
और फिर राजी हो गये थे
हज़ार गायों के बदले
शुनःशेप की बलि भी देने को,
जिससे कि राजा का बेटा रोहिताश्व
जी सके,
फिर पूछना दिलीप से
जिसने नंदिनी को बचाने के लिए
स्वयं को अर्पित कर दिया था,
बेटा पाने के लिए.
कभी पूछ लेना विश्वामित्र से
कि कैसे हारे थे एक गाय के हाथों?
फिर पूछना कृष्ण से
कि कैसे वे गायों के पीछे-पीछे वन
वन भटके,
उन्हें बांसुरी सुनायी.
पूछना मेरी मां से
जो सारी ज़िंदगी
पहली रोटी गाय को देती रही,
पूछना मेरी बुआ से
जो बिदाई के समय
सबसे ज़्यादा गाय से
लिपट कर रोयी थीं.
आज अघ्न्या गायें
शुनःशेप की तरह बलि के खंभे से
बंधी
चीत्कार कर रहीं हैं —
मेरी मां मुझे प्यार नहीं करती
मेरा पिता धन के बदले मुझे
बेंच चुका है.
मेरा राजा अपना बेटा
बचाना चाहता है,
और मेरा ईश्वर अपनी तृप्ति—
किस सुंदर देवता का नाम पुकारूं
किसे गुहारूं,
कौन है ऐसा जो मुझे अदिति दे,
बुद्धि दे, शक्ति दे
कि मैं अपने पिता को देख सकूं,
मां को देख सकूं
इन्हें गाएं न कहो
ये वृंदावन और काशी की
विधवाएं हैं.
ये कामधेनु की पुत्रियां,
ये कपिला की बहनें,
ये नंदिनी की माताएं,
बस दोहन के लिए हैं,
बस शोषण के लिए हैं.

- भूतपूर्व निदेशक,
वी.ई.सी.सी., कोलकाता–७०००६४.
ईमेल -srivastav.dinesh.kumar@gmail.com

विष्णु प्रभाकर प्रतिष्ठान

ए-२४९, सेक्टर-४६, नोएडा-२०१३०१. मो. : ९८१०९११८२६

मानव मूल्यों के प्रति समर्पित साहित्यकार श्री विष्णु प्रभाकर ने अपने जीवन में हज़ारों पत्र लिखे होंगे. इन पत्रों में वे नितांत स्वाभाविक रूप से अपने अंतर मन की बात निष्पक्ष रूप से लिखते थे. हम चाहते हैं कि उन पत्रों को यथा संभव एकत्र करके उनके द्वारा व्यक्त महत्वपूर्ण विचारों का एक संकलन तैयार करें.

इस कार्य में हमें उन सभी का सहयोग अपेक्षित है जिन्होंने उनके पत्रों को अपने पास संजो के रखा हो. हमारी आप सभी से विनम्र प्रार्थना है कि उन सभी पत्रों की फ़ोटो प्रतिलिपि हमारे पते पर भेजने का कष्ट करें. मेरी मेल आई.डी. atul.kumar018@gmail.com पर भी आप भेज सकते हैं. मूल पत्र आप अपने पास ही रखें, साथ ही हमारी योजना एक स्मृति ग्रंथ का प्रकाशन की भी है जिसके लिए आपकी स्मृतियां लिखित रूप से आमंत्रित हैं.

अतुल कुमार प्रभाकर, मंत्री

पप्पू पाकिस्तानी

जूनियर मंटो

पप्पू, चुपचाप किसी विचार मुद्रा में खोया हुआ सा, लंबे-लंबे क़दम बढ़ाता हुआ, लगभग दौड़ने जैसी हालत में घर की ओर चला जा रहा था. उसके उतावलेपन का अंदाज़ा उसकी दौड़ने जैसी चाल से सहज लगाया जा सकता था. उसकी सांसें फूली हुई थीं और मस्तक पर पसीने की बूंदों का जाल दिखाई दे रहा था. उसका चेहरा देखने से कभी-कभी ऐसा भी लगता था, कि वह शायद अभी रो पड़े. वह कुछ बेचैन–सा लग रहा था, जैसे उसका किसी ने कुछ छीन लिया हो.

अचानक उसके आगे एक लावारिस घूमता कुत्ता आ गया. कुत्ते ने पप्पू को देखा तो खड़े होकर दुम हिलाना आरंभ कर दिया. कुत्ते की हिलती दुम देखकर पप्पू का ग़ुस्सा सातवें आसमान पर जा पहुंचा. आत्मनियंत्रण खोते हुए, पप्पू ने कुत्ते को जोर से लात मारी और दो-तीन गंदी गालियां देते हुए बड़बड़ाया, 'मादर चोद, चला जा सामने से.' कुत्ता, चांऊ ... चांऊ ... चाऊं ... करता दूर भाग गया. पप्पू के उस क्रियात्मक रवैये को देखकर साफ़ लगा कि पप्पू का आत्मसंयम डगमगाया हुआ है. इस समय उससे बातचीत करना ठीक न हो.

पप्पू थोड़ा सा ही आगे बढ़ा था कि ... अचानक किसी ने पीछे से जोर से कहा, 'पाकिस्तान हार गया. '

आवाज़ अधिक ऊंची नहीं थी, फिर भी पप्पू के कान में गोली के समान लगी.

पप्पू तुरंत पीछे घूमा और घूर-घूर कर चारों ओर देखा. लेकिन सड़क पर उसे दूर तक कोई नहीं दिखा. कोई इंसान तो क्या, कुत्ता भी नज़र नहीं आया. फिर, कुत्ते को तो अभी-अभी उसने लतयाया ही था. कुत्ता तो बोल भी नहीं सकता, आवाज़ किसी इंसान की थी.

पप्पू को सड़क पर कोई भी दिखाई नहीं दिया, फिर भी उसने चार-पांच, मां-बहन की गालियां चीख़ने जैसी आवाज़ में किसी को दे डालीं. गालियां किसी ने सुनी या नहीं, लेकिन पीछे से किसी की कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई.

शायद, 'पाकिस्तान हार गया' वाक्य कहने वाला व्यक्ति, पप्पू को ऐसा बोलकर किसी घर में घुस गया हो. या फिर कहीं छिप गया हो. लेकिन इस बात का उसे पूरा विश्वास था कि इस समय 'पाकिस्तान हार गया' वाक्य पप्पू को शूल के समान चुभेगा. तीखी मिर्ची के समान पप्पू उसे पचा न पायेगा. और भड़ास निकालते हुए कुछ न कुछ अवश्य बोलेगा. इसलिए उसने ऐसा बोला.

पप्पू वापस मुड़कर चला ही था कि अचानक वही वाक्य पप्पू के कान में फिर घुसा. पप्पू को ऐसा लगा जैसे कोई मधुमक्खी कान के ऊपर भिनभिनायी हो और उसने अंदर घुसकर जोर से डंक मारा हो. पप्पू झुंझला उठा. पहले से अधिक गंदी गालियां बड़बड़ाते हुए उसने एक रोड़ा उठाकर, पीछे घूमकर जोर से किसी को मारा. लेकिन किसी को न कोई चोट पहुंची और न कोई नुकसान हुआ. क्योंकि पीछे तो दूर तक कोई था ही नहीं.

ग़ुस्से से पगलाया, पप्पू, गालियां बड़बड़ाता घर की ओर चल दिया. 'हरामजादा, कोई दिख जाता तो, गोली मार देता. ख़ून पी जाता भोसड़ी वाले का. पप्पू को छेड़ते हैं. जानते नहीं साले, पप्पू मधुमक्खी का छत्ता है.'

पप्पू ने जैसे ही घर में प्रवेश किया, उसे हल्की–सी ऊपर उठी देहली मे ठोकर लगी. पप्पू गिरते-गिरते बचा. उसकी दो बच्चियां—सानो और अलिसा जो पैर पटिकन खेल रही थीं, खिलखिलाकर हंस पड़ीं. उनका यूं खिलखिलाकर हंसना पप्पू को बहुत अखरा. उसे लगा कि वे उसकी

खिल्ली उड़ा रही हैं. तभी उसे उसी वाक्य 'पाकिस्तान हार गया' की याद आ गयी. बस फिर क्या था, 'जैसे जले पर नमक.' पप्पू भिन्ना गया. फिर से उसका स्वयं पर से नियंत्रण जाता रहा. उसने तुरंत शहतूत की खपची उठायी और दोनों बच्चियों को पीटना शुरू कर दिया. बच्चियां जोर-जोर से रोने लगीं. रोने बिलबिलाने का शोर सुनकर, पप्पू की पत्नी ज़रीना ने उसका हाथ पकड़कर उसे रोकना चाहा तो, उसने उसे भी पीटना आरंभ कर दिया. बच्चियों और स्वयं को बिना कारण पिटता देख, ज़रीना तुरंत समझ गयी, 'आज पाकिस्तान मैच हार गया. ज़रूर भारत से हारा होगा. इसलिए पिटाई होना लाजिमी है. इसके अलावा कोई चारा नहीं.'

जब पाकिस्तान, भारत के अलावा किसी अन्य विपक्षी टीम से मैच हारता है, तो पप्पू को दुख तो होता है. लेकिन वह उसे कुनैन की कड़वी गोली समझकर पचा जाता है. विपक्षी टीम के खिलाड़ियों को गाली दे-देकर ग़ुस्सा शांत कर लेता है. लेकिन जब पाकिस्तान, भारत से क्रिकेट मैच हारता है तो पप्पू दुख और पीड़ा की भड़ास बीवी-बच्चों पर निकालते हुए उन्हें ख़ूब पीटता है. गली-मुहल्ले वाले भी उसे चिढ़ाकर-चिढ़ाकर आग में घी डालने का काम करते हैं. जिसका सीधा प्रभाव उसके पारिवारिक जीवन पर पड़ता है.

वर्षों से यही सिलसिला चला आ रहा है. जब भी पाकिस्तान, भारत से मैच हारता तो पप्पू बरगला उठता. उसे हरगिज़ बर्दाश्त नहीं था कि पाकिस्तान, भारत से मैच हारे. यदि ऐसा हो भी जाता तो हार की टीस उसे अंदर तक ख़ूब सालती. कई बार तो वह जोर-जोर से रोने भी लगता. और काफ़ी देर तक फ़फ़क-फ़फ़क कर रोता. उसके बारे में लोग अक्सर यह भी कहते कि वो पाकिस्तानी टीम पर सट्टा लगाये रहता है और हार से बोखला उठता है. उसे पीड़ा हार की नहीं पैसे की होती है. लेकिन वास्तव में ऐसा था नहीं. पाकिस्तानी टीम से उसकी भावनाएं जुड़ी थीं. एक ऐसा भावनात्मक जुड़ाव जैसा एकमात्र लाड़ले बच्चे से होता है. अथवा ऐसा लगाव जैसा प्यार में पागल, एक-दूसरे पर मर मिटने वाले प्रेमी–प्रेमिका में होता है. इसीलिए हारने पर उसका मन अत्यंत आहत होता. और किसी दूसरे पर वश न चले तो सीधी आफ़त बीवी-बच्चों पर. हार की पीड़ा और ग़म भुलाने के लिए वह कई दिन तक घर में इस तरह घुसा रहता, जैसे बहुत बीमार हो.

इसके ठीक विपरीत जब पाकिस्तान मैच जीत जाता है तो पप्पू की ख़ुशी सातवें आसमान पर होती. वह अपने परिवार को ढेर सारा प्यार-दुलार देता. बीवी को बांहों में उठाकर झूले जैसा झुलाता. बच्चों को पुलकित हो-होकर चूमता. उनके लिए नये कपड़े और खिलौने ख़रीद कर लाता. घर में पकवान और सिवैयां बनवाता. ऐसा वातावरण बना देता जैसे कि ईद का त्यौहार हो. यहां तक कि कई बार पास–पड़ोस में लड्डू भी बांट देता. इससे पड़ोसियों को बिन समाचार-पत्रों, टी. वी. और रेडियो आदि के सूचना मिल जाती, 'पाकिस्तान मैच जीत गया.'

पप्पू, पाकिस्तान के प्रत्येक खिलाड़ी के खेल का मूल्यांकन कर-करके लोगों को बताता कि किसने क्या कारनामा किया? किस खिलाड़ी से कहां चूक हुई? कितने राष्ट्रीय और अंतराष्ट्रीय रेकॉर्ड्स बने और पिछले टूटे. मैच की संपूर्ण समरी सविस्तार और व्याख्या सहित पप्पू के पास संग्रहीत होती. 'मैन ऑफ द मैच' रहने वाले खिलाड़ी के विषय में तो भाव-विह्वल होकर वह कह उठता, 'मेरा बच्चा कितना सोहना खेला. जी चाह रहा था मुंह चूम लूं.'

पाकिस्तानी खिलाड़ियों की भारी-भरकम तारीफ़े करते हुए वह नहीं अघाता. पाकिस्तानी टीम और खिलाड़ियों के बारे में उसके पास मौखिक रूप से इतना डेटा संग्रहीत था कि आठ जीबी की पेन ड्राइव फुल हो सकती थी.

अपने महत्वपूर्ण कार्यों को छोड़कर, पप्पू, पाकिस्तानी टीम का प्रत्येक मैच देखता—टेस्ट, वन-डे, २०-२०. वह पाकिस्तानी टीम और खिलाड़ियों का पागलपन की सीमा तक दीवाना था.

पप्पू का वास्तविक नाम 'पप्पू' ही था. लेकिन पाकिस्तानी टीम और खिलाड़ियों का अत्यधिक प्रशंसक होने के कारण, लोगों ने उसके नाम के पीछे 'पाकिस्तानी' जोड़ दिया था. इसके बाद वह अपने गांव में 'पप्पू पाकिस्तानी' के नाम से

प्रसिद्ध हो गया था. 'पप्पू पाकिस्तानी' नाम सुनकर उसे अज़ीब–सी ख़ुशी होती थी. पप्पू, पाकिस्तानी टीम और खिलाड़ियों पर दिलों-जान न्यौछावर करने वाला था और शायद उनकी बुराई करने वाले की जान ले सकने वाला भी. वह 'मां-बहन' की गालियां सुन सकता था, लेकिन पाकिस्तानी टीम की बुराई नहीं. वह खाना-पीना छोड़ सकता था, लेकिन पाकिस्तानी टीम का मैच नहीं.

एक बार की बात है, पाकिस्तान, न्यूज़ीलैंड से बुरी तरह मैच हार गया. पप्पू को बिलकुल आशा नहीं थी कि पाकिस्तान, न्यूज़ीलैंड से मैच हार जायेगा. लेकिन संयोग से ऐसा हो गया तो, पप्पू को धक्का-सा लगा. एक ओर यदि वह आहत हुआ तो दूसरी ओर उसे न्यूज़ीलैंड पर बहुत क्रोध आया. उस समय उसका मन इतना बेचैन था कि अगर उसे न्यूज़ीलैंड का सबसे सज्जन खिलाड़ी भी मिल जाता, वह उसे मृत्युदंड न देता तो पीट अवश्य देता. उनका कोई दूर का रिश्तेदार भी मिल जाता तो शायद वह उसे भी न छोड़ता.

पप्पू ने हार के ग़म में शाम का खाना नहीं खाया और घर में घुसकर ऐसे लेट गया जैसे कई महीनों से बीमार हो. रात भर हार के कारण तलाशने में बेचैन रहा. कई बार एम्पायरों पर शक़ हुआ, तो कभी पिच की ख़राबी अनुभव हुई. उसने ऐसी भी कल्पना की कि न्यूज़ीलैंड के खिलाड़ियों के बैट्स में अवश्य ही स्प्रिंग लगे होंगे. इसलिए ही तो आराम से टच करने पर भी बॉल बाउंड्री पार कर जा रही थी. इसी उधेड़-बुन में वह देर तक जागता रहा.

आदत के विपरीत सुबह देर से उठकर चाय-नाश्ते का सामान लेने नौशाद की दुकान पर पहुंचा. पप्पू ने, 'चाय पत्ती, चीनी, फैन और बीड़ी-बंडल का विवरण नौशाद को बताया. लेकिन उसने प्रतिस्वरूप गंभीर मुद्रा में कहा, 'यार, पाकिस्तान खेला तो अच्छा था लेकिन हार गया. कहीं मैच फ़िक्स तो नहीं था.' इतना सुनते ही पप्पू अंदर से तिलमिला उठा. और जिसकी आशा बहुत कम थी, उसने कोई प्रतिक्रिया नहीं की. बस मरियल–सी आवाज़ में बोला, 'यार, मैं तो किसी और काम से आया था. तू चुपचाप सामान दे. मेरे जख़्मों को मत कुरेद.'

पप्पू को पूरा विश्वास था कि पाकिस्तानी खिलाड़ी बिक नहीं सकते.

पप्पू का मूड देखकर नौशाद ख़ामोश हो गया और आवश्यक सामान देकर शीघ्रता से उसे विदाई दी अन्यथा एक-दो गाली सुननी पड़तीं या लड़ाई होती. क्योंकि पप्पू ने एक दिन पहले ही घोषणा कर दी थी, 'अगर पाकिस्तान मैच हार गया और मुझे किसी ने चिढ़ाया तो क़सम ख़ुदा की गोली मार दूंगा.'

वर्ल्ड कप २०१५ के ग्रुप बी में १५ फरवरी को भारत-पाकिस्तान का मैच होना प्रस्तावित था. जैसा कि सब जानते हैं भारत-पाक मैच का ख़ुमार लोगों के दिलों-दिमाग़ पर कुछ अधिक ही होता है. मीडिया भी उसे मैच के रूप मे नहीं एक द्वंद्व युद्ध के तौर पर प्रस्तुत करती है. महीनों पहले टिकटें बुक हो जाती हैं.

पप्पू के गांव में भी उस मैच को लेकर काफ़ी शोर-शराबा था. गर्म चर्चाओं के साथ, काफ़ी मोटा सट्टा मैच पर लगा हुआ था. पप्पू को आशा ही नहीं बल्कि पूरा विश्वास था कि पुरानी अवधारणा को तोड़ कर इस बार वर्ल्डकप में पाकिस्तान, भारत को अवश्य हरा देगा. उसने घोषणा कर दी थी, 'यदि पाकिस्तान जीता तो पूरे गांव की दावत करेगा. लेकिन यदि पाकिस्तान हारा और किसी ने उसे चिढ़ाया तो क़सम ख़ुदा की गोली मार देगा.'

जिस दिन भारत-पाक का मैच था उस दिन पप्पू को उस वकील ने फ़ोन करके बुला लिया, जिसके पास उसकी ज़मीन का मुकदमा चल रहा था. मुकदमा बिलकुल अंतिम पड़ाव में था. पप्पू तीन बार सुनवाई की तारीख़ें आगे बढ़वा चुका था. यदि पप्पू वकील से जाकर न मिलता तो उसका जेल जाना निश्चित था. उस समय परिस्थितियां कुछ ऐसी हो गयीं कि पप्पू को निश्चित रूप से जाना पड़ा. इसलिए उसने योजना बनायी कि शहर में तो जगह-जगह टी. वी. चलते रहते हैं, कहीं भी मैच देख लिया जायेगा. किसी न किसी चाय वाले की दुकान पर तो चाय की चुस्कियों के साथ मैच देखने को मिल ही जायेगा.

पप्पू योजना बनाकर घर से शहर चला तो आया लेकिन व्यस्तता के कारण भारत की पारी न देख सका. परंतु इसका उसे अधिक मलाल न हुआ. क्योंकि वकील ने विपक्षी को भी घर पर बुला रखा था, जिससे पप्पू और उनमें सुलह हो सके. इसका परिणाम सुखद निकला. दोनों में आपसी समझौता हो गया.

भारत ने सात विकिट खोकर ३०० रन का स्कोर खड़ा किया. आठ ओवर का खेल होने के बाद पप्पू को

लघुकथा

इतिहास के खिलाफ़

✍ मार्टिन जॉन

काउंटर पर बैठे 'सोना स्वीट्स' के मालिक ने ऑर्डर के मुताबिक सामने खड़े वर्दीधारी को मिठाई का पैकेट थमाते हुए नरमी से पूछा, ''नये दिख रहे हैं!''

''हां...'' पांच सौ का नोट बढ़ाते हुए उसने अपनी बात पूरी की. ''...नयी पोस्टिंग है इस इलाके में... सब-इंस्पेक्टर वाहिद ख़ान. ... पैसे काट लीजिए!''

वर्दीधारी को अपनी तरफ़ पैसे बढ़ाते देख उसे हैरानी हुई. पुलिसवालों की ख़रीदारी के इतिहास में ऐसा पहली बार हो रहा था. याद नहीं उसे, कभी किसी पुलिसवाले ने सामान के एवज़ में पैसे दिये हों. हिचकिचाते हुए अपनी आवाज़ में यथासंभव नरमी लाकर कहा, ''सर, क्यों शर्मिंदा कर रहे हैं... पहली बार आये हैं, सेवा का मौक़ा दीजिए!''

''जी नहीं!... अपनी दुकान में मुझे कॉमन कस्टमर की तरह ही ट्रीट करें!... पैसे काटिए!''

झेपते हुए उसने मिठाई की क़ीमत वसूल कर बाक़ी पैसे लौटा दिये.

वापस होते वर्दीधारी को वह हैरतअंगेज़ नज़रों से देख ही रहा था कि बग़ल वाली स्टेशनरी दुकान का मालिक जगतराम दौड़ते हुए नमूदार हुआ, ''क्या तुमको भी उसने पैसे दिये?''

''हां भई!... कहता है मुझे भी साधारण ग्राहक समझो.''

''मुझसे भी उसने यही कहा, फेसवाश लोशन की क़ीमत अदा करते हुए.''

''ऐसी ईमानदारी इनमें तो कभी देखी नहीं!''

''यार, मैं एक बात सोचता हूं... कहीं ये फ़र्जी इंस्पेक्टर तो नहीं!''

''शायद!'' हैरानगी की स्थिति अभी भी उन पर बुरी तरह से तारी थी.

अपर बेनियासोल, पो.आद्रा, जि. पुरुलिया, पश्चिम बंगाल-७२३१२१.
मो.: ९८००९४०४७७

पाक का मैच देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ. एक चाय की दुकान पर जैसे ही उसने मैच देखना आरंभ किया तो भारत का विशाल स्कोर देखकर उसका माथा ठनक गया. ऊपर से पाक की स्थिति अच्छी नहीं. उसने मन ही मन भारतीय खिलाड़ियों को गालियां दीं. क्योंकि उसने बातों ही बातों में भांप लिया था कि दुकान पर भारतीय टीम के समर्थक ही हैं. सबसे अधिक गालियां दीं उसने मोहम्मद शमी को, जिसकी स्विंग होती गेंदों पर पाक के खिलाड़ी रन नहीं बनाकर जल्दी-जल्दी ऑउट हुए थे. 'साले, मुसलमान होकर मुसलमान का गला काटा है.' उसने मन ही मन बड़बड़ाया. जैसे ही पाक टीम का कोई खिलाड़ी ऑउट होता, दुकान पर जोर से शोर होता लेकिन पप्पू को धक्का-सा लगता. इधर कोई विकिट गिरता, उधर पप्पू का दिल जोर से धड़कता. पाक टीम पूरे ५० ओवर भी न खेल सकी और २२४ रन पर आल ऑउट हो गयी. इधर पाक का अंतिम खिलाड़ी ऑउट हुआ उधर पप्पू पाकिस्तानी ज़िंदगी से. पाक को मिली ७६ रनों की हार की ख़बर देखकर उसके दिल की धड़कनें इतनी बढ़ीं कि उसे हार्ट अटैक हो गया. वहीं भारतीय ज़मीं पर धड़ाम से गिरकर पप्पू पाकिस्तानी ने दम तोड़ दिया.

मो. इसरार (उर्फ जूनियर मिंटो)
अजीम प्रेमजी स्कूल, वार्ड नं. ३, निकट गुरुद्वारा, दिनेशपुर, उधमसिंह नगर- २६३१६०.
मो.: ९४५६५९३१२६, ९२५८५२३३७०

डीटीपी के लिए संपर्क करें

समाचार पत्र, पुस्तकों व पत्रिकाओं, इनव्हिटेशन कार्ड, विजिटिंग कार्ड के डीटीपी, ले-ऑउट और डिझाइन के लिए संपर्क करें.

सुगी आर्ट्स

३०२, वडाला उद्योग भवन, वडाला, मुंबई-४०० ०३१.
मो.नं.: ९८३३५४०४९०/९८९२८३११४६

नायिका

गिरीश पंकज

किशन नायिका बेला कुमारी का बचपन से ही दीवाना था.

उस वक़्त बॉलीवुड में अनेक हीरोइनें थीं, मगर बेला की अदायगी किशन के दिल को छू लेती थी. चालीस साल पहले बेला कुमारी पर फ़िल्माये गये गीत 'सैंया तू है बड़ा रसीला, कितना प्यारा छैल-छबीला' को किशन अक्सर गुनगुनाया करता था. सातवें दशक की सुपर-डुपर हिट फ़िल्म 'सोनमछरी' के इस गीत के प्रति किशन की दीवानगी का आलम यह था कि बड़े होने पर उसने इस गीत को 'यू ट्यूब' से डॉउनलोड' कर लिया था और अक्सर सुना करता था. बेला के कुछ और गाने भी किशन ने डॉउनलोड कर लिये थे. न केवल गाने वरन कुछ फ़िल्मी दृश्य भी किशन के मोबाइल में संगृहीत थे. बेला की फ़िल्म 'सदा सुहागन' किशन ने कम से कम बीस बार देखी थी. 'सोना और प्यार', 'नागिन का बदला', 'हसीन सपने', 'बेटी' आदि न जाने कितनी ही फ़िल्में थीं, जो किशन ने एक से अधिक बार देखीं. बेला के साथ हीरो कमल कुमार की जोड़ी हिट हुआ करती थी. दोनों की मोहब्बतें परदे पर देखते हुए किशन पड़ोस की महिमा को दिल दे बैठा. इसके पीछे दिलचस्प कारण था कि महिमा का चेहरा बेला से काफ़ी मिलता-जुलता था. किशन ने महिमा को बेला से उसकी एक तरफ़ा मोहब्बत के बारे में कुछ नहीं बताया था. क्योंकि उसे पता था जैसे ही महिमा को यह बात पता चलेगी, वह किशन से दूर हो जायेगी.

बेला की पहली फ़िल्म 'रोशनी' देखने के बाद से ही किशन बेला से प्यार करने लगा था. फ़िल्म में हीरोइन एक अनाथ युवक से मोहब्बत करती है. फ़िल्म के हीरो का नाम भी किशन था. परदे का पात्र किशन बचपन से ही अनाथ था. चाचा ने उसे पाला-पोसा. परदे के बाहर के किशन की भी यही कहानी थी. परदे के अनाथ हीरो की जगह किशन अक्सर ख़ुद के होने की कल्पना करता और मधुर-मधुर सपने देखता.

यह एक-तरफ़ा प्यार था लेकिन था-तो-था. बेला मुंबई में थी और किशन भाटापारा में. वह अक्सर यही सोचा करता कि जब कभी मुंबई जाऊंगा तो बेला से ज़रूर मिलूंगा और 'आइ लव यू' भी कहूंगा... अगर कह सका तो. अपने इस ख़्याल पर किशन मन-ही-मन ख़ूब हंसता. उसके मित्र भी उसकी दीवानगी का मज़ा लेते और अक्सर उसे छेड़ते रहते.

एक दिन जब चर्चा चली तो उसके मित्र राघव ने कहा — ''अबे, तुझे कुछ होश भी है? तेरी मां की उम्र की है बेला. अब तो सत्तर पार कर गयी है. और तू है चालीस का. तीस साल का अंतर है दोनों में. कुछ तो सोच.''

किशन बोला — ''तू ठीक कहता है लेकिन दिल है कि मानता नहीं. दिल लगा बूढ़ी से तो क्या करूं? फिर जगजीत सिंह वाला गाना नहीं सुना क्या कि ना उम्र की सीमा हो, न जन्म का हो बंधन. जब प्यार करे कोई तो देखे केवल मन.''

राघव ने हंसते हुए कहा — ''ठीक है बच्चू, जाओ. मिल आओ. कर लो हसरत पूरी. निराशा हाथ लगेगी. पछताओगे कि किससे मिलने आ गया. बेला तुझे देखेगी और पूछेगी, 'बेटे, सुनाओ, क्या हाल है? ...कैसे आना हुआ', तब समझ में आयेगा.''

किशन मुस्कराते हुए बोला — ''चलेगा. लेकिन

१जनवरी १९५७;
एम. ए. (हिंदी), बी. जे., लोक संगीत में डिप्लोमा.

: लेखन :

सबलोग, जनसत्ता, व्यंग्य यात्रा, प्रजातंत्र लाइव, पुस्तक संस्कृति, नवभारत टाइम्स, दैनिक हिंदुस्तान, धर्मयुग, साप्ताहिक हिंदुस्तान, कादंबिनी, इंडिया टुडे, नया ज्ञानोदय, नई दुनिया, राजस्थान पत्रिका, साक्षात्कार, मीडिया विमर्श, समागम, लोकमत समाचार (नागपुर), कल्याण, हरिगंधा, नई धारा, वर्तमान साहित्य, जनसंदेश, अभिनव मीमांसा, लमही, विश्वगाथा, नवनीत, आदि में अनेक रचनाएं प्रकाशित.

: प्रकाशन :

सोलह व्यंग्य संग्रह, सात उपन्यास, पंद्रह पुस्तकें नवसाक्षरों के लिए, सात पुस्तकें बच्चों के लिए, तीन ग़ज़ल संग्रह, सात अन्य पुस्तकें, व्यंग्य नाटक संग्रह.

: अनुवाद :

व्यंग्य उपन्यास मिठलबरा की आत्मकथा का तेलुगु और उडिया में अनुवाद. अन्य कई रचनाओं का तमिल, उर्दू, कन्नड, भोजपुरी, असमिया, नेपाली, छत्तीसगढ़ी में भी अनुवाद.

: सम्मान पुरस्कार :

व्यंग्य, बाल साहित्य एवं पत्रकारिता के लिए देश की अनेक संस्थाओं द्वारा सम्मानित.

: उल्लेखनीय :

युगधर्म में व्यंग्य स्तंभ 'देखी-सुनी' (१९८२-८४), दैनिक नवभारत रायपुर में पांच साल तक व्यंग्य स्तंभ, दैनिक भास्कर में दो साल तक बात-कारामात स्तंभ, रायपुर के सांध्य दैनिक चैनल इंडिया में दिसंबर २०१३ से मई २०१५ तक प्रतिदिन काट-कटाक्ष नामक स्तंभ में व्यंग्य रचना प्रकाशित. दैनिक जनकर्म, रायगढ़ में प्रति सप्ताह राजधानी के रंग नामक स्तंभ. दैनिक नवप्रदेश में प्रतिदिन व्यंग्य लेखन (अगस्त २०१७ से). भोपाल की मासिक संस्कृत पत्रिका 'अतुल्य भारतम' के हर अंक में संस्कृत में व्यंग्य प्रकाशित.

: विशेष :

कर्नाटक, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, छत्तीसगढ़ के बारह छात्र गिरीश पंकज के व्यंग्य साहित्य और उपन्यास पर पीएच. डी. उपाधि के लिए शोधरत. सात छात्रों द्वारा लघुशोध कार्य.

पहले मुलाकात तो हो. कब मुंबई जाना होगा, कब मिलना होगा, कुछ पता नहीं.''

सचमुच एक स्वप्न था बेला से मिलना. किशोर मन में हीरो-हीरोइनों के प्रति एक लगाव-सा बन जाता है. लड़कियां लोकप्रिय स्मार्ट हीरो से एकतरफ़ा प्यार करने लगती हैं, तो लड़के हीरोइनों पर फिदा रहते हैं. यह नयी बात नहीं. लेकिन किशन किशोरावस्था से ही इस मामले में कुछ ज़्यादा ही गंभीर था. उसने किसी फिल्मी पत्रिका से बेला का पता भी नोट कर लिया था — 'सुगंधा', ५५ शांता अपार्टमेंट्स, बैंक ऑफ महाराष्ट्र के पीछे, गोखले मार्ग, सांताक्रुज वेस्ट, मुंबई.' पत्रिका में फ़ोन नंबर भी दिया था. उसने फौरन नोट कर लिया. एक दिन किशन ने नंबर मिलाया भी. घंटी बजती रही लेकिन किसी ने उठाया नहीं. थोड़ी-थोड़ी देर में प्रयास करता रहा. बाद में इंगेज़ टोन आने लगी. किशन निराश हो गया. फिर भी रोज़ एक बार तो फ़ोन कर ही लेता था.

एक दिन किसी ने उठाया — ''हैलो, कौन बोलता? किससे बात करना मांगता?''

किशन घबरा गया, कुछ नहीं सूझा. उसने बात नहीं की. दूसरे दिन फिर नंबर मिलाया. आज फिर वही आवाज़, ''हैलो, कौन बोलता?''

''मैं... मैं... किशन बोल रहा हूं. मैडमजी हैं?''

''कौन मैडम?''

''बेला कुमारी''...

''वो....? मार्केट गयी हैं. क्या काम है. अब से फ़ोन मत करना. वरना पुलिस को कंप्लेन करना पड़ेंगा, क्या.''

इतना बोल कर महिला ने फ़ोन काट दिया. किशन घबरा गया. उसे समझ नहीं आया कि फ़ोन बेला कुमारी ने उठाया था, या उसकी सर्वेंट ने. वैसे किशन को पक्का विश्वास था कि फ़ोन उठाने वाली बेला कुमारी ही थी. किशन अनेक फ़िल्मों में बेला की आवाज़ सुन चुका था. वह समझ गया कि बेला बात नहीं करना चाहती. ऐसे सैकड़ों

फ़ोन तो रोज़ ही आते होंगे. ऐसी हीरोइन से कोई भी बात करना चाहेगा. बेचारी किस-किस से बात करेगी? ख़ैर, कोई बात नहीं. अब वह एक दिन मुंबई जा कर ही सीधे मिलेगा.

वक़्त के रुपहले पर्दे पर नित नये-नये दृश्य बनते रहते हैं. जीवन की पटकथा तीन घंटे में ख़त्म नहीं होती. यह फ़िल्म दिन, महीनों और सालों तक चलती है. किशन अपनी इस फ़िल्म का एक किरदार था. यह और बात है कि उसके जीवन में कोई हीरोइन नहीं थी सिवाय बेला के. लेकिन पढ़-लिख कर कैरियर बनाने में किशन ऐसा मशगूल हुआ कि बेला भी उसके दिमाग़ से ओझल हो गयी. जब तक वह सेटल हुआ तब तक चालीसवें वर्ष में प्रवेश कर रहा था. देना बैंक के अधिकारी के रूप में उसकी नौकरी लग गयी. बेला का ध्यान कुछ हट-सा गया था. चाचा चाहते थे कि किशन शादी कर ले, लेकिन किशन का मूड ही नहीं बना. जिस महिमा को वह चाहता था, वह किसी और की हो चुकी थी. उसके बाद से किशन ने शादी के बारे में सोचना ही बंद कर दिया था. लेकिन कभी-कभी वह इतना ज़रूर सोचता कि अगर कोई बेला के चेहरे से मिलती-जुलती युवती मिलेगी, तो उससे शादी ज़रूर कर लेगा. लेकिन इंतज़ार करते-करते वह चालीस साल का हो गया.

उधर हीरोइन बेला गुज़रे ज़माने की अनेक नायिकाओं की तरह अज्ञातवास भोग रही थी. कोई बीमार हो कर बिस्तर पर है, तो कोई अपनी बची-खुची दौलत के सहारे छोटा-मोटा व्यवसाय कर रहा है. अब तो अनेक नयी-नयी हीरोइनें बॉलीवुड में छायी हुई हैं. इस भीड़ में बेला जैसी हीरोइनों को कौन पूछे. बॉलीवुड को तो हंसता हुआ नूरानी चेहरा और जिस्म का जलवा दिखाने वाली हीरोइनों की ज़रूरत रहती है. इसके लिए कतार लगी है. पुरानी हीरोइनें चरित्र अभिनेत्री भी नहीं बनना चाहतीं. उनका एक स्वर्णिम इतिहास रहा. वे अब गुमनाम रहना पसंद करेंगी, छोटे-मोटे रोल करेंगी ही नहीं. सबके साथ एक दिन यही होना है. नास्टेल्जिया में डूब कर अपने जीवन की फ़िल्म का अंतिम दृश्य ख़ुद ही शूट कर रही हैं जिसमें तन्हाई ही तन्हाई है और यादों की परछाई है.

अपनी ही फ़िल्मों को बार-बार देखना, गानों को सुन-सुन कर मगन रहना, बेला का अपना रूटीन रहता है.

एक बार बेला को किसी एक फ़िल्म में बूढ़ी काकी के किरदार में देख कर किशन को दुख हुआ था. बेला सत्तर

साल की हो गयी थी लेकिन मेक-अप के कारण फ़िल्म में और अधिक बूढ़ी लग रही थी. फ़िल्म देखने के बाद किशन के मन में बचपन में देखी फ़िल्में कौंधने लगी. उसने ठान लिया कि वह जल्द ही मुंबई जायेगा और बेला से मिलेगा.

जहां चाह, वहां राह. यह संयोग ही था कि किशन का तबादला मुंबई हो गया. उसकी तो जैसे लॉटरी ही लग गयी. मित्रों ने बधाई दी.

राघव बोला — ''जाओ बेटे, तुम्हारा तो बेला आंटी से मिलने का परमानेंट जुगाड़ हो गया.''

''देखो यार, अब कोई ख़ास दिलचस्पी नहीं है. पहले कुछ क्रेज़ था, अब नहीं है. फिर भी मौक़ा मिला तो देखूंगा.'' किशन ने उदासीनता दिखायी.

राघव बोला, ''हमसे मत उड़ो. और जो मन में है, वह भाव चेहरे पर लाओ बच्चू.''

राघव की बात सुन कर किशन ज़ोर से हंस पड़ा था.

कुछ समय बाद किशन मुंबई शिफ़्ट हो गया. नवी मुंबई में फ़्लैट मिला, मगर उसका बैंक था ठाणे में. बैंक आने-जाने में ही पूरा समय निकल जाता था. लेकिन उसके दिमाग़ में बेला की याद बनी रहती थी. उसने ठान लिया था कि किसी छुट्टी वाले दिन वह प्लान बनायेगा.

और एक दिन...

रविवार की सुबह-सुबह किशन 'सुगंधा', ५५ शांता अपार्टमेंट्स, बैंक ऑफ महाराष्ट्र के पीछे, गोखले मार्ग, सांताक्रुज़ वेस्ट' तक पहुंचने के लिए घर से निकल ही गया. लगभग डेढ़ घंटे की बस यात्रा के बाद वह सांताक्रुज़ पहुंचा और शांता अपार्टमेंट्स खोजने लगा. गोखले मार्ग कहां है,

कौन बताये. खोजना कठिन हो गया. बैंक ऑफ महाराष्ट्र की सैकड़ों शाखाएं हैं. कोई ठीक से बता नहीं पा रहा था. खोजते-खोजने किशन परेशान हो चुका था. लेकिन आज तो बेला कुमारी से मिल कर ही जाऊंगा. आख़िर दोपहर तीन बजे उसे गोखले मार्ग और बैंक ऑफ महाराष्ट्र के पीछे शांता अपार्टमेंट्स मिल ही गया. वह ख़ुशी से झूम उठा. लेकिन अभी तो तीन बजे हैं. अभी मिलना ठीक नहीं होगा. बुज़ुर्ग हीरोइन आराम कर रही होगी इसलिए बेहतर यही होगा कि शाम को मिला जाय. पांच बजे के बाद.

किशन को भूख लगी थी, प्यास भी. एक रेस्टोरेंट में जा कर उसने खाना खाया. फिर इधर-उधर टहलता रहा. अचानक उसे फूलों वाली दुकान नज़र आयी. वह सोचने लगा, लौटते वक़्त एक बुके ले लूंगा. फ़िल्म 'रोशनी' में जब हीरो किशन पहली बार बेला से मिलता है तो उसे गुलाब का फूल भेंट करता है. किशन ने भी गुलाबों का गुलदस्ता तैयार करा लिया.

पांच बज गये, तो किशन शांता अपार्टमेंट्स के पांचवें माले में चढ़ गया. लिफ़्ट ऊपर जा रही थी मगर किशन का दिल बैठा जा रहा था. वह बुरी तरह घबरा रहा था. लिफ़्ट पांचवें तल में रुक गयी.

सामने ही लिखा था — 'सुगंधा'.

किशन की धड़कनें तेज़ हो गयी. हिम्मत नहीं हुई कि कॉल बेल बजाए. कहीं उसकी भद्द न पिट जाये. बेला कुमारी ने गेट ऑउट कह दिया तो? या जोर से डांट-फटकार ही दिया? क्या भरोसा हीरोइन है. वह सोचने लगा कि वापस लौट जाना ही ठीक होगा. वह मुड़ ही रहा था कि दरवाज़ा खुल गया. सामने बेला कुमारी खड़ी मंद-मंद मुसका रही थी. किशन को लगा शायद बेला भीतर कहीं से उसे देख रही थी. या यह उसका भ्रम ही रहा हो.

किशन हड़बड़ा कर बोला — ''मैं... मैं... आ... आ... प से ही मिलने आया था. बहुत दूर से आ रहा हूं...''

इतना कह कर किशन ने बुके बढ़ा दिया — ''आपके प्रिय फूल.'

''ओह, हॉऊ स्वीट. आइ लाइक रोज़. थैंक्स. आइए. मैं बाहर जा रही थी, लेकिन चलिए, कुछ देर बैठ लेते हैं.''

बेला कुमारी को बिल्कुल पास से देख रहा था किशन. वह काफ़ी बुज़ुर्ग दीख रही थी, लेकिन चेहरे में सुंदरता की कुछ-कुछ निशानी बची हुई थी. चेहरे पर तेज़ झलक रहा था. लाल साड़ी और स्लीवलेस ब्लॉउज़ में बेला कुमारी अभिजात्य आभा से दीप्त हो रही थी. लाख छिपाने के बावजूद कोई भी अनुमान लगा सकता था कि यह महिला सत्तर पार कर चुकी होगी.

बेलाकुमारी ने पूछा — ''आपको मेरा पता किसने बताया? क्या आप पत्रकार हैं?''

''जी-जी, जी नहीं. पत्रकार तो नहीं हूं, मगर कभी-कभी लिखने का शौक़ है. आपका पता किसी पत्रिका में देखा था. बचपन से ही आपकी फ़िल्मों का दीवाना रहा हूं. ये... ये देखिए, अपने मोबाइल में आप पर फ़िल्माये गाने डॉउनलोड करके रखे हुए हैं. देखिए.''

किशन ने अपना मोबाइल चालू कर दिया. गीत बजने लगा, 'सैंया तू है बड़ा रसीला, कितना प्यारा छैल छबीला.' गीत में बेला झूम-झूम कर नाच रही थी.

बेला खिलखिला कर हंस पड़ी और बोली, ''वर्षों बाद इस सीन को देखा. अच्छा लगा. स्वीट सांग है.''

बेला ने ठंडी-सी आह भरी. फिर बोल पड़ी, ''कट रही है ज़िंदगी यादें पुरानी साथ हैं,

था कभी अपना ज़माना ये कहानी याद है
वो पुराने पल कभी भी लौट कर आते नहीं
काश आ जाते कभी अपनी यही फ़रियाद है...

यही सोचते हैं हम. अब पहले जैसी बात ही नहीं रही. पहले जैसे लोग भी नहीं रहे. टोटली चेंज.''

''जो भी हो, आपके समय की बात ही निराली थी. एक दौर था आप लोगों का, और आज देखिए, क्या हो रहा है. किशन कुछ-कुछ सामान्य हुआ, आप लोगों के समय ऐसी वल्गैरिटी नहीं थी. हीरोइनों में नारी अस्मिता नज़र आती थी.''

''क्या नज़र आती थी? मैं समझी नहीं. वाट्स मीनिंग ऑफ अस्मिता?''

''अस्मिता मतलब...गरिमा, इज़्ज़त, शालीनता, मर्यादा, जो भी कह लें।''

''ओह. आइ सी. ग्रेट.'' बेलाकुमारी मुसकायी, ''लगता है आपकी मदर टंग हिंदी है? आपकी हिंदी स्वीट है.''

''जी-जी. और... आपकी मदर टंग ?

''लीव इट. क्या करोगे जानकर. मैं तो अब हिंग्लिश से काम चलाती हूं. पचास साल पहले जब बंगाल से आयी. थी तो हिंदी बोल नहीं पाती थी. लेकिन धीरे-धीरे सीख

लघुकथा

जाल

✍ कृष्ण मनु

कोर्ट के कई चक्कर लगाने, आर्थिक क्षति झेलने और काफ़ी थुक्कम-फ़ज़ीहत के बाद जब केस रफ़ा-दफ़ा हुआ तो उसकी जान में जान आयी. वह इस कदर वहां से भागा जैसे जाल से छूटा पंछी.

बदहवासी की हालत में वह मुझसे टकरा गया. मैंने उसे संभाला. उससे जान पहचान थी. उसकी हालत देख मैं आश्चर्य और कौतूहल से भर उठा. उसे लगभग ठेलते हुए सामने की चाय दुकान पर ले आया. एक प्याली चाय पकड़ाने के बाद उससे पूछा — क्या बात है हरि भाई, दुकान-दारी बंद कर इस वक्त कहां से भागे आ रहे हो?

जवाब में उसने राम कहानी सुनायी कि कैसे उसकी दुकान के सामने दुर्घटना घटी, कैसे पूछताछ करती पुलिस उसके पास पहुंची और गवाह बनाकर चलती बनी. फिर तो ऐसा चक्कर चला कि गाहे-बगाहे कोर्ट से सम्मन आ जाता और उसे हाज़िरी लगाने दुकान बंद कर दिन-दिन भर कोर्ट परिसर की धूल फाकनी पड़ती. उस दिन दुकान बंद रहने और बिक्री बट्टा नहीं होने पर घर में भी फाकामस्ती की नौबत आ जाती सो अलग.

...ओह, तो हरि भाई जागरूक नागरिक का फर्ज़ निभाह कर आ रहे हैं. मेरे मुंह से निकली बात उसे गोली की तरह लगी — ऊह! जागरूक नागरिक. उसने एक-एक शब्द जैसे चबाकर कहा और मुझे देखने लगा.

पोद्दार हार्डवेयर स्टोर, कतरास रोड, मटकुरिया, धनबाद-८२६००१.

गयी. लेकिन यहां इंडस्ट्री में इंग्लिश ज़्यादा चलती है. पहले हिंदी कम थी, मगर अब यह भी चलने लगी है. मिली-जुली भाषा हिंग्लिश. यही हमारी मदर टंग हो गयी है. टीवी के चैनल्स देखती हूं, वहां भी यही चल रही है.''

इतना बोल कर जैसे कुछ याद आया, बेला कुमारी बोल पड़ी, ''...अरे, ठहरो. तुम्हारे लिए चिल्ड वाटरऽ ले कर आती हूं. काम वाली औरत दो-तीन दिन से आ नहीं रही. ख़ुद ही सारा काम करना पड़ता है.''

''नहीं-नहीं रहने दीजिए. आप तकलीफ न करें.''

किशन ने संकोच भरी मुसकान के साथ कहा. लेकिन बेला कुमारी नहीं मानी. उठ कर भीतर चली गयी. किशन बैठे-बठे ही कमरे का मुआयना करने लगा. अस्त-व्यस्त कमरा. जैसे कोई रख-रखाव करने वाला ही नहीं. दीवार पर अनेक फ़ोटोग्रॉफ्स टंगे हुए थे. बेला कुमारी की उस दौर की अनेक फ़िल्मों के दृश्य थे. कुछ फ़िल्म फेयर अवार्ड के थे, एक उस वक़्त का जब राष्ट्रपति फखरुद्दीन अली अहमद ने पद्मश्री प्रदान की थी. सारे छायाचित्र पच्चीस-तीस साल पुराने. एक आलमारी में नीचे से ऊपर तक ट्रॉफ़ियां ही ट्राफ़ियां नज़र आ रही थीं, जिन पर कहीं-कहीं धूल और जाले भी साफ़ नज़र आ रहे थे.

बेला कुमारी पानी ले कर आ गयी. किशन ने गिलास उठा लिया.

''मुंबई में सर्वेंट की बड़ी प्रॉबल्म है. कोई ज़्यादा टिकता ही नहीं. मनमाना पैसा मांगते हैं. कुछ महीने पहले प्लेसमेंट वालों ने जशपुर की एक लड़की भेजी थी, लेकिन वो फिर किसी हीरो के घर लग गयी. शायद वहां उसे ज़्यादा पेमेंट मिला हो.''

''अरे, जशपुर तो हमारे छत्तीसगढ़ में ही है. वहां से आदिवासी लड़कियों को काम-काज के लिए मुंबई लाया जाता है.''

किशन की बात सुनकर बेला कुमारी चौंक पड़ी, ''अच्छा? लेकिन वहां की लड़कियों को हर तरह से एक्सप्लाइट किया जाता है.''

''जी-जी, मैंने भी सुना है.'' किशन चुपचाप पानी पीता रहा.

''और सुनाओ बेटे, करते क्या हो?''

''बेटा...'' यह संबोधन सुन कर किशन को झटका-सा लगा. मन-ही-मन वह कुछ और सोच रहा था कि 'आइ

लव यू' कहेगा, लेकिन बेला कुमारी ने तो अच्छी पटकनी दे दी. बेटा कह दिया. अब? मन ही मन सोचने लगा, बेला ने ग़लत नहीं किया. मैं उसके बेटे की उम्र का ही तो हूं, और लगा था उसे अपनी प्रेयसी समझने. बेला कुमारी को देख कर किशन को लगा वह अब तक अनजाने में पाप ही कर रहा था. तीस साल बड़ी और बूढ़ी महिला के बारे में कैसे-कैसे ख़्याल उसके मन में उठा करते थे. वह मन ही मन इस बात को लेकर हर्षित था कि बेला कुमारी से मुलाकात हो गयी और उसके बेटे वाले संबोधन ने उसके मन को शुद्ध कर दिया. एक रूमानी स्वप्न था उसका जो पूरा हो गया, इतना ही काफ़ी है. लेकिन उसका मन 'बेटे' वाले संबोधन को स्वीकार नहीं कर पा रहा था.

इसके पहले कि किशन कुछ कहता, बेला कुमारी हंसते हुए बोल पड़ी —

''... तुमको बेटा कह सकती हूं न?... क्योंकि तुम मेरे बेटे के उम्र के ही हो और बिल्कुल मेरे बेटे विराज की तरह नज़र भी आते हो. विराज लंदन में सेटल है. बेटी निकिता दुबई में रहती है. कभी-कभार बच्चे आते हैं मगर सालों बाद. अब तो जैसे अकेले ही ज़िंदगी का सफ़र काटना है. अब तो गोल्डन मेमोरी हैं केवल... पता नहीं कब गॉड बुलायेगा... अरे, मैं तो अपनी कहे जा रही हूं. तुम भी कुछ बोलो. कैसे आना हुआ? क्या ऑटोग्राफ़ नहीं लोगे?''

इतना बोल कर बेला कुमारी किशन के बिल्कुल करीब आ कर बैठ गयी.

''ऑटोग्राफ़...? हां-हां, दीजिए न.''

किशन ने पॉकेट डायरी निकाली और आगे बढ़ा दी. बेला कुमारी ने पास ही रखी क़लम उठाकर कुछ लिखने लगी, लेकिन क़लम चली नही. वह बार-बार प्रयास करती रही. किशन ने अपनी क़लम आगे कर दी. बेला कुमारी ने थैंक्स कहा और किशन की डायरी पर लिखा, गॉड ब्लेस यू? फिर नीचे अपने दस्तख़त किये. किशन कुमार ने महसूस किया कि बेला कुमारी के हाथ में कंपन थी. बेला कुमारी ने झिझकते हुए कहा, कभी-कभी हाथ कांपने लगते हैं. चेक कराना है. वैसे भी अब उम्र हो गयी. लंबी पारी खेल ली. अंतिम सीन चल रहा है. पता नहीं कब 'द ऐंड' हो जाये.

''नहीं-नहीं, ऐसा नहीं होगा. आप सौ साल जियेंगी.'' किशन बोला, 'आप के पास अभी भी निर्माता तो आते ही होंगे?''

''हां, कभी-कभार आते हैं.'' बेला कुमारी के चेहरे पर कुछ तनाव उभर आया, ''लेकिन उनके प्रपोज़ल हर्ट करने वाले होते हैं. पेमैंट भी मेरी अपनी 'डिग्निटी' के ख़िलाफ होता है. इसलिए अब जो आता है, उसे थैंक्स कह कर विदा कर देती हूं. ये मायानगरी बड़ी निर्मम है. दूर से ख़ूबसूरत नज़र आती है मगर भीतर से... ख़ैर, लीव इट... और हां, अब क्या प्रोग्राम है तुम्हारा? कहां जाओगे? मुझे कहीं निकलना है, वरना कुछ देर और बैठते. सॉरी.''

किशन समझ गया कि बेला कुमारी कह रही है कि अब सभा बर्ख़ास्त करो. किशन कुछ देर और रुकना चाहता था. बेला कुमारी के दिल की बातें सुनने को बेताब था. उसका मन कर रहा था कि बेला कुमारी को देखता रहे... देखता रहे. लेकिन जब बेला ने ही उसे जाने के संकेत दे ही दिये तो रुकना ठीक भी नहीं था.

''बस, अब निकलूंगा. आपसे मिलने की ख्वाहिश पूरी हो गयी.'' किशन ने बेबस-हंसी के साथ कहा, ''फिर कभी आऊंगा.''

''ज़रूर आना. तुमसे मिल कर अच्छा लगा. थैंक्स.''

किशन उठ खड़ा हुआ. उसकी क़लम नीचे गिर गयी तो उसे उठाने वह नीचे झुका. बेला कुमारी को लगा कि किशन उसके पैर छू रहा है.

''अरे-अरे, ये क्या करते हो?'' इतना बोलकर बेला कुमारी ने उसे उठाया और गले से लगा कर उसका माथा चूम लिया. कुछ सेकेंड किशन को गले लगाने के बाद बेला कुमारी बोली — ''इट वाज़ ए नाइस इवनिंग विथ किशनकुमार.'' फिर वह हंस पड़ी. उसने किशन के गाल को थपथपाया. अचानक मिले इस प्यार को पाकर किशन बेकाबू-सा हो गया. उसने अपने भीतर गीलापन महसूस किया इससे उसे अजीब-सी बेचैनी होने लगी. वह फ़ौरन बाहर निकल जाना चाहता था.

किशन हाथ जोड़ कर तेज़ी से बाहर निकल गया. ग्लानि भरे मन के साथ.

उसकी आंखों में आंसू थे.

संपादक, सद्भावना दर्पण
२८ प्रथम तल, एकात्म परिसर,
रजबंधा मैदान,
रायपुर (छत्तीसगढ़) ४९२००१.
मो. : ९४२५२१२७२००

आमने-सामने

साहित्य आत्मछवि चमकाने का साधन नहीं !

✍ *गिरीश पंकज*

बहुत बार होता है कि पाठकों से लेखक केवल अपनी रचनाओं के माध्यम से ही बात नहीं करना चाहता बल्कि सीधे पाठक के सामने अपने मन की गांठ खोलना चाहता है, लेखक और पाठक के बीच की दीवार ख़त्म करने का प्रयास है यह स्तंभ, 'आमने-सामने'. अब तक मिथिलेश्वर, बलराम, (स्व.) प्रो. कृष्ण कमलेश, कृष्ण कुमार चंचल, संजीव, (स्व.) सुनील कौशिश, डॉ. बटरोही, राजेश जैन, डॉ. अब्दुल बिस्मिल्लाह, कुंदन सिंह परिहार, अवधेश श्रीवास्तव, श्रीनाथ, राम सुरेश, विजय, विकेश निझावन, नरेंद्र निर्मोही, पुन्नी सिंह, श्याम गोविंद, प्रबोध कुमार गोविल, स्वयं प्रकाश, मणिका मोहिनी, राजकुमार गौतम, डॉ. रमेश उपाध्याय, सिद्धेश, डॉ. हरिमोहन, डॉ. दामोदर खड़से, रमेश नीलकमल, चंद्रमोहन प्रधान, डॉ. अरविंद, (स्व.) सुमन सरीन, डॉ. फूलचंद मानव, मैत्रेयी पुष्पा, तेजेंद्र शर्मा, हरीश पाठक, जितेन ठाकुर, अशोक 'अंजुम', राजेंद्र आहुति, आलोक भट्टाचार्य, डॉ. रूपसिंह चंदेल, दिनेश चंद्र दुबे, डॉ. कृष्णा अग्निहोत्री, जयनंदन, सत्यप्रकाश, संतोष श्रीवास्तव, उषा भटनागर, प्रमिला वर्मा, डॉ. गिरीश चंद्र श्रीवास्तव, प्रो. मृत्युंजय उपाध्याय, सुधा अरोड़ा, पं. किरण मिश्र, डॉ. तेज सिंह, डॉ. देवेंद्र सिंह, राकेश कुमार सिंह, रमेश कपूर, डॉ. उर्मिला शिरीष, रामनाथ शिवेंद्र, अलका अग्रवाल सिगतिया, संजीव निगम, सूरज प्रकाश, रामदेव सिंह, मंगला रामचंद्रन, प्रकाश श्रीवास्तव, सलाम बिन रजाक, मदन मोहन 'उपेंद्र', भोला पंडित 'प्रणयी', महावीर रवांल्टा, गोवर्धन यादव, डॉ. विद्याभूषण, नूर मुहम्मद 'नूर', डॉ. तारिक असलम 'तस्नीम', सुरेंद्र रघुवंशी, राजेंद्र वर्मा, डॉ. सेराज खान 'बातिश', डॉ. शिव ओम 'अंबर', कृष्ण सुकुमार, सुभाष नीरव, हस्तीमल 'हस्ती', कपिल कुमार, नरेंद्र कौर छाबड़ा, आचार्य ओम प्रकाश मिश्र 'कंचन', कुंवर प्रेमिल, डॉ. दिनेश पाठक 'शशि', डॉ. स्वाति तिवारी, डॉ. किशोर काबरा, मुकेश शर्मा, डॉ. निरुपमा राय, सैली बलजीत, पलाश विश्वास, डॉ. रमाकांत शर्मा, हितेश व्यास, डॉ. वासुदेव, दिलीप भाटिया, माला वर्मा, डॉ. सुरेंद्र गुप्त, सविता बजाज, डॉ. विवेक द्विवेदी, सुरभि बेहेरा, जयप्रकाश त्रिपाठी, डॉ. अशोक गुजराती, नीतू सुदीप्ति 'नित्या', राजम पिल्लै, सुषमा मुनींद्र, अशोक वशिष्ठ, जयराम सिंह गौर, माधव नागदा और वंदना शुक्ला से आपका आमना-सामना हो चुका है. इस अंक में प्रस्तुत है गिरीश पंकज की आत्मरचना.

बचपन में कभी इस बात की कल्पना ही नहीं की थी कि एक दिन लेखन की दुनिया में अपनी आंशिक उपस्थिति दर्ज कराऊंगा. हाईस्कूल तक पहुंचते-पहुंचते न जाने कैसे लेखन की ओर प्रवृत्त होता चला गया. हालांकि इसके पीछे भी एक कारण रहा. शालेय पत्रिका 'वन्यजा' के वार्षिकांक के लिए बच्चों से रचनाएं आमंत्रित की गयीं. अनेक बच्चों ने इधर-उधर से रचनाएं चुराकर अपने नाम से दे दीं, लेकिन यह काम मुझसे हो नहीं पा रहा था. पिता का आदर्शवादी वाक्य रह-रह कर मेरे सामने आ जाता कि चोरी करना बुरी बात है... चोरी करना बुरी बात है. किंतु मैं तनाव में था जब पत्रिका प्रकाशित होगी तो मित्रों के नाम होंगे, मेरा नाम नहीं होगा. यह दुख मुझे खाये जा रहा था. अचानक एक दिन कविता फूट पड़ी और मैंने लिखा, ''नींद से जागो प्यारे बच्चो / सवेरा सुहाना मौसम लाया / खेलकूद के दिन बीते हैं / पढ़ने का अब मौसम आया.'' और भी कुछ पंक्तियां थीं. मैंने दूसरे दिन अपने सर जितेंद्र कुमार झा को कविता दे दी. उन्होंने पूछा, ''तुमने ही लिखी है न?'' मैंने कहा, ''यस सर.'' उन्होंने मुझे शाबाशी दी, सिर पर हाथ फेरा और मैं ख़ुशी-ख़ुशी लौट गया.

झा सर की प्रशंसा के बाद मेरे भीतर का कवि हिलोरें मारने लगा और उसके बाद तो सिलसिला ही शुरू हो गया. अनेक कविताएं पिता जी द्वारा प्रदत गांधी डायरी में उतरने लगीं. पिताजी ने जब देखा कि उनका लड़का कविताएं लिखने का शौक़ीन हो गया है तो उन्होंने एक गांधी डायरी मुझे भेंट करके कहा था, तुम अपनी कविताएं इसी में लिखा करो. पिता कवि तो नहीं थे लेकिन साहित्य अनुरागी ज़रूर थे. इक्का-दुक्का कविताएं भी उन्होंने लिखीं. गांधी पर लिखी गयी उनकी एक कविता अब तक याद है, 'तुमको त्रेता का राम कहूं या द्वापर का घनश्याम कहूं...' पिताजी खादी भंडार चलाने में इतने व्यस्त थे कि साहित्य की दुनिया में सक्रिय न हो सके. उन्होंने मुझमें कुछ संभावना देखी तो मुझे प्रोत्साहित करते रहे. पिताजी जब कभी भी बाहर जाते तो मेरे लिए एक-दो पुस्तकें ज़रूर लेकर आते. चाहे वह कविता की क़िताब हो, कहानी हो या उपन्यास. मेरी रुचि

देख कर उन्होंने खादी भंडार में 'धर्मयुग', 'सारिका', 'दिनमान' और 'नवभारत टाइम्स' मंगवाना भी शुरू कर दिया. उनका मुझे सख़्त निर्देश था कि ''स्कूल से लौटने के बाद शाम को खादी भंडार आ जाया करो.''

मैं खादी भंडार चला जाता और वहां 'नवभारत टाइम्स' को ध्यान से पढ़ता. मुझे अच्छी तरह से याद है कि मैं पिताजी से अख़बार के बारे में कुछ-न-कुछ पूछा करता. पिताजी मेरी जिज्ञासा शांत करते. वे बताते कि अख़बार में आठ कॉलम होते हैं, महत्वपूर्ण ख़बरें पहले पन्ने पर प्रकाशित होती हैं, रोचक ख़बरों को बॉक्स में डाला जाता है. फिर वे एडिट पेज़ के बारे में बता कर कहते, ''इसे ज़रूर पढ़ा करो. इसमें अच्छे-अच्छे विचार प्रकाशित होते हैं. इसमें पाठकों के विचार भी छपते हैं. तुम भी अपने विचार भेज सकते हो. कभी-कभी पिताजी भी किसी ख़ास मुद्दे पर अपने विचार भेजा करते थे जो नवभारत टाइम्स के 'पसंद अपनी-अपनी क़लम' में प्रकाशित भी होते थे. मैं नवभारत टाइम्स में पत्र लिखने लगा. 'बाल जगत' नामक बच्चों के पन्ने पर भी मेरी रचनाएं प्रकाशित होने लगीं. 'सारिका', 'दिनमान' 'धर्मयुग', 'माधुरी', 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' आदि में मेरे पत्र प्रकाशित होने लगे. छत्तीसगढ़ के अख़बारों में भी प्रकाशित होते रहे. यह सब देखकर मेरे मन में उत्साह संचारित होने लगा. सोचने लगा कि शायद इस दिशा में ही आगे बढ़ा जा सकता है.

जब पत्रिकाओं में मेरे विचार छपने लगे, तभी एक दिन मनेंद्रगढ़ में विद्यानंद दुबे नामक एक पत्रकार पधारे. उन्हें बिलासपुर से प्रकाशित होने वाले अख़बार 'बिलासपुर टाइम्स' के लिए मनेंद्रगढ़ में एक संवाददाता की ज़रूरत थी. उन्होंने दो-चार लोगों से पूछा, तो किसी ने मेरे बारे में बता दिया कि गिरीश चंद्र उपाध्याय 'पंकज' नाम का एक युवक बहुत सक्रिय है. आप उससे बात कीजिए. दुबे जी मेरे पास आये और उन्होंने कहा, ''तुमको बिलासपुर टाइम्स का संवाददाता बनना है.'' मैं फ़ौरन ही तैयार हो गया, लेकिन समाचार बनायेंगे कैसे, इसका आइडिया था नहीं, सो दुबे जी से ही पूछ लिया, तो वे मुस्कुरा पड़े और फिर मुझे अपने तरीक़े से कुछ समझाया. भाव यही था कि किसी भी समस्या को देख कर सुंदर शब्दों में लिपिबद्ध कर दो, वही समाचार है. उन्होंने कुछ और बातें भी बतायी होंगी जो मुझे याद नहीं, लेकिन इतना याद है कि दुबे जी के चले जाने के बाद मैंने अपने कस्बे की अनेक समस्याओं के बारे में कुछ-न-कुछ ख़बर बनाकर 'बिलासपुर टाइम्स' को भेजना शुरू कर दिया. कभी किसी कलाकार को देखा, तो उसके बारे में ख़बर बना दी. कभी कहीं गंदगी देखी तो उसके बारे में लिख दिया. कभी किसी विभाग में भ्रष्टाचार की ख़बर पता चली, तो उसे भी ख़बर बना कर भेज दी. कहीं कोई सड़क दुर्घटना हो गयी तो फ़ौरन फ़ोन लगा कर डेस्क पर बैठे सब एडिटर को उसका विवरण दे दिया.

उस वक़्त 'बिलासपुर टाइम्स' में हर १५ दिन में एक सक्रिय संवाददाता को पुरस्कृत करने की योजना चल रही थी. डेढ़ महीने बाद 'बिलासपुर टाइम्स' के प्रथम पृष्ठ पर एक बॉक्स छपा — ''इस पक्ष के सर्वश्रेष्ठ संवाददाता गिरीश चंद्र उपाध्याय पंकज. उन्हें उनकी सक्रियता के लिए पच्चीस रुपये का सम्मान दिया जायेगा.'' यह सूचना देख मैं बल्लियों उछलने लगा. पिताजी को अख़बार दिखाया, अपने मित्रों को घूम-घूमकर दिखाता रहा. सबने मेरी तारीफ़ की. मैं आज भी आश्चर्यचकित हूं कि आख़िर कैसे बिना किसी प्रशिक्षण के मैंने कुशलतापूर्वक समाचार बनाना सीखा क्योंकि मेरे समाचारों का बहुत अधिक संपादन नहीं होता था. जैसा भेजता था, वैसा ही छपता था. अब मैं विचार करता हूं, तो समझ सकता हूं कि बचपन में पिता ने जो मुझे अध्ययन के व्यवहारिक संस्कार दिये, उसी कारण ही यह संभव हो सका और मैं हर ख़बर सुव्यवस्थित तरीक़े से बनाने में सक्षम रहा. शायद नवभारत टाइम्स को ध्यान से पढ़ने का नतीज़ा ही था कि मुझे बहुत अधिक मशक्कत नहीं करनी पड़ी.

संवाददाता के रूप में अपनी भूमिका निभाते-निभाते एक दिन किसी शुभचिंतक ने कहा कि तुम रायपुर चले जाओ. वहां जाकर दैनिक 'युगधर्म' अख़बार में काम करो. तुम्हारा लेखन और अधिक निखरेगा. युगधर्म के संपादक बबन मिश्रा जी उनके परिचित थे. उन्होंने एक पत्र उनके नाम लिखकर मुझे दे दिया, और मैं दूसरे दिन ही रायपुर रवाना हो गया. अपने साथ मैंने विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में छपे पत्रों की कटिंग संभाल कर रखी थी. मिश्र जी ने उन्हें देखा और प्रसन्न होकर बोले, ''तुममें बड़ी संभावना है.'' फिर उन्होंने सामान्य ज्ञान की कुछ बातें पूछीं. मैंने सब का सही-सही जवाब दिया. उसके बाद मिश्र जी ने कहा, ''शाबाश तुम इस अख़बार में काम कर सकते हो. कब से ज्वाइन करोगे?'' मैंने तपाक से कहा, ''आज से ही कर लेता हूं.''

उन्होंने कहा, ''ठीक है कर लो, लेकिन एक-दो दिन बाद घर जाकर कपड़े वग़ैरह ले आओ ताकि यहां रहकर नियमित रूप से पत्रकारिता कर सको.'' कुछ दिन बाद वापस मनेंद्रगढ लौटा और माता-पिता के चरण छूकर वापस रायपुर आ गया. और उसके बाद फिर कभी लौटकर मनेंद्रगढ़ जाने की कल्पना ही नहीं की. रायपुर में ऐसा रमा, ऐसा रमा कि मत पूछिए. 'युगधर्म' की नौकरी करते-करते मैंने हिंदी में एम. ए. किया और बैचलर ऑफ़ जर्नलिज़्म की पढ़ाई की. सुखद परिणाम यह रहा कि प्रावीण्य सूची में प्रथम स्थान प्राप्त किया. जो छात्र मिडिल-हाई स्कूल में औसत दर्जे का था, वह पत्रकारिता में टॉप कर गया. पिता जी को जब यह ख़बर पता चली तो वे फूले नहीं समाये. उन्होंने पत्र लिखा कि ''तुम मेरे भरोसे पर खरे उतरे. इसी तरह से काम करते रहो. भगवान तुम्हारा भला करेंगे.''

पत्रकारिता करते-करते साहित्य में भी मेरी गहरी रुचि बनी हुई थी. जैसा मैंने पहले ही बताया कि शालेय पत्रिका में कविता प्रकाशित होने से मुझे प्रोत्साहन मिला और विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में मैं छुटपुट लिखने भी लगा था लेकिन रायपुर आने के बाद मुझे एक बड़ा कैनवास मिला. यह बताना मैं भूल गया कि मनेंद्रगढ़ में रहते हुए मैंने दो साहित्यिक संस्थाएं बनायी थीं. एक संस्था का नाम था ''संबोधन'' और दूसरी का नाम ''सरगुजा समाज''. सरगुजा-समाज में वैचारिक गोष्ठियां होती थीं. सामाजिक मुद्दों पर विचार-विमर्श होता था, तो संबोधन साहित्य-संस्कृति और कला को समर्पित थी. संबोधन तीन मित्रों ने मिल कर बनायी, मेरे साथी थे वीरेंद्र श्रीवास्तव और जीतेंद्र सिंह सोढ़ी. दोनों मित्र आज भी कविता की दुनिया में सक्रिय हैं. संबोधन के कारण साहित्यिक गतिविधियों में हम बहुत सक्रिय हुए. हमने 'यात्निका' नामक एक पुस्तक प्रकाशित की, जिसमें उस समय लिख रहे हम कुछ मित्रों की कविताएं शामिल थीं. यह काम उस समय हुआ, जब मैं ले-देकर १९ साल का हुआ था. उसी समय बिजनौर से प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'ठलुआ' से मैं जुड़ गया. कवि हुक्का इस मासिक पत्रिका का प्रकाशन करते थे. इस पत्रिका के कारण मेरे मन में हास्य और व्यंग्य लेखन की रुचि विकसित हुई, और मैं हास्य क्षणिकाएं लिखने लगा. स्कूल के वार्षिकोत्सवों और सार्वजनिक गणेशोत्सवों के दौरान मित्र कौशल के साथ कुछ हास्य नाटकों का मंचन भी किया. रायपुर आने के बाद यह सिलसिला बंद हो गया लेकिन जब 'युगधर्म' से जुड़ा, तो फिर मैंने गद्य व्यंग्य लेखन की ओर क़दम बढ़ाया और युगधर्म में नियमित रूप से व्यंग्य लिखने लगा. मेरी रुचि देखकर संपादक जी ने मुझे एक स्तंभ ही दे दिया जिसका नाम था 'देखी-सुनी'. हर हफ़्ते मेरा एक व्यंग्य छपने लगा. कुछ महीने लिखने के बाद मैंने संपादक से आग्रह किया कि मैं प्रतिदिन व्यंग्य लिखना चाहता हूं. संपादकजी चकरा गये और बोले, ''यह बड़ा कठिन काम है. तुम नहीं कर पाओगे.'' मैंने विनम्रतापूर्वक कहा कि शायद कर लूंगा. वे तैयार हो गये और उसके बाद मैं प्रतिदिन 'देखी-सुनी' में एक व्यंग्य लिखने लगा. एडिट पेज़ का आख़िरी कॉलम मेरे लिए ही खाली रहता और प्रतिदिन मैं किसी-न-किसी मुद्दे पर एक व्यंग्य लिखकर दे दिया करता. एक दिन संपादक ने मुझसे कहा, ''गिरीश, तुम्हारे व्यंग्य की ख़ूब तारीफ़ हो रही है. अच्छा लिख रहे हो. कीप इट अप. इसी तरह लिखते रहो.'' उनके इस प्रोत्साहन से मुझे एक बार फिर ऊर्जा मिली, जैसी ऊर्जा हाईस्कूल के समय झा सर से मिली थी.

मैं 'युगधर्म' में अनेक भूमिकाओं के साथ उपस्थित रहता. कभी किसी मुद्दे पर संपादकीय लिखता, कभी वाणिज्यिक पेज़ की ख़बर बनाता, कभी शहर में होने वाली सांस्कृतिक गतिविधियों को कवर करता. कहीं कोई दुर्घटना हो जाती, तो उसकी ख़बर भी बना कर दे देता. और इन सब को करने के बाद जब समय मिलता तो एक व्यंग्य भी लिखने का समय निकाल लेता. इस तरह साहित्य और पत्रकारिता की जुगलबंदी ज़ारी रही. यह सिलसिला आज तक ज़ारी है. आज पीछे मुड़कर देखता हूं या अपने पर साक्षी-भाव से दृष्टिपात करता हूं तो संतोष होता है कि मैंने अपने पिता के सपनों के साथ न्याय किया. पिता का आशीर्वाद रंग लाया. आठ उपन्यास, १५ व्यंग्य संग्रह, तीन ग़ज़ल संग्रह, बच्चों के लिए सात पुस्तकें, नवसाक्षरों के लिए १५ क़िताबें, तथा अन्य पुस्तकें अलग. कुल ५५ पुस्तकें. इतना कुछ लिखने के बाद यही सोचता हूं कि अभी भी मेरा श्रेष्ठ आना बाक़ी है. माना कि साहित्य की लगभग हर विधा में मैंने लिखा है लेकिन मैं उस एक रचना की तलाश में हूं, जो मुझे परम संतुष्टि प्रदान करे. वैसे तो हर रचना मुझे अच्छी लगती है. अपने उपन्यासों की बात करूं, तो मेरे सारे उपन्यास मुझे

(शेष भाग पृष्ठ ५५ पर देखें...)

सागर/सीपी

'सर्जन अपने आप में साधन नहीं, साध्य है !'

डॉ. मनोहर अभय

*डॉ. मनोहर अभय के सद्य: प्रकाशित गीत संकलन के लोकार्पण कार्यक्रम में एक श्रोता के रूप में मेरी उपस्थिति थी. कथाकार डॉ. सूर्यबाला विशेष अतिथि. उनके वक्तव्य में कुछ ऐसा था कि डॉ. अभय के विषय में अधिक गहराई से जानने की इच्छा हुई. पूर्व निश्चित समय पर उनके आवास पर पहुंचा. वे अपने अतिथि कक्ष में बैठे, किसी नयी पत्रिका को देख रहे थे. मेरी दस्तक. स्वागत की मुद्रा में द्वार पर खड़े हैं. जब तक मैं सोफ़े पर नहीं बैठा वे खड़े रहे. मेरा पहला वाक्य — '**कथाबिंब** के लिए आपके साक्षात्कार की इच्छा है. उत्तर 'मेरा परम सौभाग्य'. अब शुरू हुए प्रश्नोत्तर.*

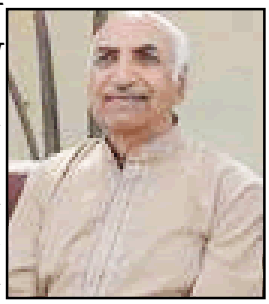

♦ काव्य सृजन का आपका सफ़र कब से और कैसे शुरू हुआ?

दस साल की उम्र, कविता की भाषा और परिभाषा भी नहीं जानता था. महात्मा गांधी की हत्या. पिताजी कचहरी से जल्दी आ गये. बोले बाहर मत जाना नाथूराम ने महात्मा गांधी को मार दिया है. वे प्रार्थना करने जा रहे थे. राम राम कहते चले गये. सोचा न समझा दूसरे दिन रद्दी काग़ज़ पर लिखा, 'बापू गये पूजा करने, नाथू ने मार डाला. हाय नाथू! हाय बापू! हे राम!! काग़ज़ कमीज़ की जेब में पड़ा रहा. मां गांव में.

घर की सफ़ाई, रसोई के काम निबटाने होते. आयु में मुझ से दस-बारह साल बड़े मामाजी आये. सफ़ाई के काम से मेरी छुट्टी. मैले कपड़े धोने जा रहे हैं. मेरी कमीज़ भी. जेब में वही काग़ज़. बोले तुम कविता करते हो? क्या इसे कविता कहते हैं? प्रति प्रश्न कोई उत्तर नहीं. बात आयी-गयी हो गयी. स्थानांतरण पर पिताजी मथुरा आ गये. नियमित पढ़ाई. लेखन जैसा कुछ नहीं. हां, पाठ्य पुस्तकों के पद्यांश, ममेरे भाइयों से सुन–सुन कर कवितावली के कवित्त, सूरदास के पद कंठस्थ हो गये. अंत्याक्षरी का युग. प्रतियोगिताओं में भाग लिया. कहीं पुरस्कार, कहीं से खाली हाथ. पढ़ने के लिए घर में रामायण, महाभारत, जयद्रथ वध और गीता. महाभारत की कहानिओं का रूपांतरण एकांकी में किया. भाषा महाभारत की संवाद शैली मेरी मौलिक कुछ नहीं. हाईस्कूल के बाद जोड़ गांठ कर कहानियां लिखीं. पहली कहानी (मैं कौन हूं) अगस्त १९५३ में आगरा से प्रकाशित 'सैनिक' में प्रकाशित हुई. 'सैनिक' का नियमित कहानीकार हो गया. कभी अज्ञेय ने 'सैनिक' के 'प्रूफ रीडिंग विभाग' में काम किया था. एक दिन कॉलेज़ जाते समय होठों पर गीत की बुदबुदाहट. लगा कि शब्द आकार ले रहे है. चलते-चलते गीत बन गया. वाणिज्य का विद्यार्थी. हिंदी प्रवक्ता ने साहित्य परिषद के लिए चुन लिया. किसी साहित्यिक संस्था की ओर से कॉलेज़ परिसर में काव्य प्रतियोगिता. भाग लिया. पुरस्कार मिला. प्रवक्ता को बतलाया. प्रार्थना सभा में घोषणा. प्रधानाचार्य के हाथों पुनः पुरस्कार ग्रहण, तालियों के बीच. अर्थशास्त्र विभाग की ओर से 'समस्यापूर्ति प्रतियोगिता' (अर्थशास्त्र सिखलाता है) कवित्त लिखा, सहायता की मामाजी ने. प्रथम पुरस्कार. वरिष्ठ कक्षा के छात्रों के विदाई समारोह में कनिष्ठ छात्रों द्वारा 'टिशू पेपर' पर सुनहरी अक्षरों में मुद्रित शुभ कामना संदेश दिये जाते थे. बड़ा प्रश्न. 'लिखे कौन?' सबसे ऊपर मेरा नाम. काम कर दिया. संदेश क्या शब्द-शब्द में कविता. विज्ञान वर्ग के साथी भी पीछे पड़ गये. लिखना पड़ा. अब कविता, कहानी, गद्यांश लिख रहा हूं, बैठे-ठाले. नया शब्द मिला. अपने शब्द कोष में जोड़ लिया. 'चोरी के शब्द' का कहीं न कहीं प्रयोग किये बिना चैन नहीं (सुबरन की चोरी करें, कवि व्यभिचारी चोर). गीत लिखे जा रहा हूं. पहला गीत छपा इंदौर की 'वीणा' में, छायावादी. ऐसे गीतों का 'अवसान समीप था. गगन कुछ लोहित हो चला' लाल सलाम का जोर. अछांदिक कविता, आधुनिकता की द्योतक. लेखनी चलायी; ऐसे नगर में जहां राधा की पायल की रुनक-झुनक और कृष्ण की बांसुरिया के अतिरिक्त कुछ और नहीं. साम्यवादी विचार तो नहीं, अपने

विचार और सामाजिक स्थितियों को उकेरना शुरू कर दिया, अछांदिक शैली में. स्नातक कक्षा का पहला वर्ष. रिहायश, मुख्य शहर से दूर, सदर बाज़ार जैसी पिछड़ी बस्ती में. साहित्य के नाम पर उर्दू के मुशायरे. साथियों ने सुझाया बस्ती में हिंदी साहित्य के प्रचार-प्रसार के लिए कुछ किया जाये. गठित हुई 'हिंदी प्रचार सभा', सदर मथुरा. हस्तलिखित पत्रिका (नव किरण) निकाली. काव्य गोष्ठियां कीं. हाशिये पर पड़े कवियों को प्रकाश में लाने का उद्यम. सोलह अल्पज्ञात कवियों के समवेत प्रकाशन के अतिरिक्त क़रीब चालीस कवियों की पुस्तकों को प्रकाश प्राप्त हुआ. त्रैमासिक पत्रिका 'हिंप्रस' (हिंदी प्रचार सभा) का संपादन-प्रकाशन. रचनाकार से संपादक हो गया. स्नातक होने के बाद, पढ़ाई पर अर्ध-विराम. बी. एड. के समकक्ष, एल टी कर अध्यापन. कॉलेज़ पत्रिका का संपादन. पढ़ने-लिखने के लिए समय ही समय. स्फुट लेखन. साहित्य रत्न, एम कॉम, पी-एच. डी. के बाद अध्यापन छोड़ प्रशासन में आ गया. हरियाणा के राज्यपाल का जनसंपर्क अधिकारी. अतिरिक्त कार्य शोध-संदर्भ. घोस्ट राइटर हो गया. पत्रकारों की संगत. पहला काव्य संकलन स्वतंत्रता की रजत जयंती पर प्रकाशित हुआ ('एक चेहरा पच्चीस दरारें'). उत्तर स्वाधीनता की विसंगतियों का रेखांकन था. एक तेज़-तार्रार कवि के रूप में नयी पहचान. पीछे रह गये गीत. अतुकांत कविताओं का सृजन. नया संकलन आया 'दहशत के बीच.' अधिकांश कविताएं पंजाब के आतंकवाद की त्रासदी को रेखांकित करतीं. पत्र-पत्रिकाओं में रचनाओं को प्रतिष्ठित स्थान. समालोचना के लिए आने लगीं पुस्तकें. कवि, कथाकार, संपादक के साथ हो गया समालोचक. मुंबई आने पर लेखन को जैसे काठ मार गया प्रशासनिक दायित्वों का भार. पल भर को समय नहीं. चौदह साल का लंबा विराम. सेवा निवृति के बाद जो लेखनी उठायी, तो निरंतर चल रही है.

♦ आपसे वरिष्ठ और आपके समकालीन रचनाकारों में आप किन से प्रभावित हुए और क्यों ?

हम मथुरा में मामाजी के साथ रहते थे. दसवीं की परीक्षा के बाद, पूछने लगे छुट्टियों में क्या करोगे? निरुत्तर. पुस्तकालय के सदस्य बन जाओ. पास में सरस्वती पुस्तकालय. जो क़िताब हाथ लगी पढ़ डाली. प्रेमचंद, प्रसाद, गुलेरी, मैथली शरण गुप्त. क्रांतिवीरों की जीवनी. 'चांद' का फांसी अंक, आनंद मठ. बलिदानियों के प्रति श्रद्धा और राष्ट्रीय भावनाओं का उबाल. प्रसाद की कविताएं सिर चढ़ गयीं. उनकी रचनाओं की बुनावट विशेषतः शब्द सौष्ठव, उपमान, प्रकृति का, मानवीयकरण और मानव मन की वृतियों का मार्मिक वर्णन, मन को छू गया. 'आंसू' ने इतना प्रभावित किया कि लिख बैठा 'आह.' लगभग उसी शैली पर. कविता हो या गद्य प्रसाद की भाषा के जादू से असंपृक्त नहीं. बच्चन, नरेंद्र शर्मा, अंचल, नवीन और सबसे ऊपर दिनकर. कुरुक्षेत्र से उर्वशी तक बहुत कुछ पढ़ा तथा गढ़ा. नीरज को इतने समीप से सुना कि उनकी रचनाओं की सहज संप्रेषणीयता ने मेरी कहने की दिशा बदल दी. सामान्य से दिखने वाले गीतों में जीवन की नश्वरता को चित्रांकित करने की ललक. रागात्मक गीतों में कहीं वेदांत की छाया, तो कहीं स्वामी विवेकानंद का आस्थावादी चिंतन. इतने पर भी अपनेपन या अपनी पहचान को बनाये रखने की कोशिश बनी रही. मातामह अपने समय के जाने-माने कवि. बृजभाषा और खड़ी बोली में सुंदर दोहे, कवित्त लिखे. कविता पर उनका प्रभाव तो नहीं, लेकिन गद्य के लिए बहुत सामग्री उनसे मिली. सामाजिक बोध और राजनीति से संपृक्त रहीं मेरी अधिकांश रचनाएं. समाज और व्यवस्था की विकृतियों से व्यथित व्यक्ति की पीड़ा स्पष्ट थी. लेकिन, प्रगतिकामियों की नारेबाज़ी नहीं. सव्य साची स्थानीय कॉलेज़ में प्रवक्ता. सी पी. एम. के कार्डहोल्डर. बड़ी कोशिश की विचारों को धोने की. मैं एक चौखटे या पिंजरे में रहने वाला नहीं. मित्र बने रहे, गुरु नहीं.

♦ लेखक और रचनाकार कोई भी रचना करते समय या पुस्तक लिखते समय कोई निश्चित उद्देश्य लेकर चलता है (अथवा जब जो मन में आया लिख दिया)?

जीवन में उद्देश्यहीन कुछ नहीं होता. मुझे अपनी एक कविता याद आ रही है. सुनाऊं?

♦ अवश्य.

मन बहलाना चाहते हो कविता से गीतों को घुंघरू की तरह बांध कर / गम ग़लत करना चाहते हो / कविता का जाम चढ़ा कर / अरे! कविता निठ्ठले मन का बहलाव नहीं है / एक उल्लास है / एक तड़प, कशिश... चोट खाये प्राणों का सहज संवेदन / आदमी के उठने-गिरने की मिठास / हर्ष–संघर्ष का उजास / उस सतरंगी आसमान की हक़ीकत / जिसे बौने कर महल में गलीचे बिछाने

गलीचे बिछाने नहीं आये... ये फ़सलें उगाना चाहते हैं / चाहते हैं / हरी भरी फ़सलें / चाहते हैं दो बीघा ज़मीन कैसे हथियायी थी तुम्हारी पिछली पीढ़ी ने समझ गये हैं / चट्टानों में दबी नदियां कैसे बाहर लायी जा सकती हैं / कैसे उगायी जा सकती हैं / हरी फ़सलें / दो बीघा ज़मीन पर.

आशा है यह कविता आपके प्रश्न का उत्तर हो!

♦ आपने बहुत बड़ी संख्या में बेहतरीन दोहे लिखे हैं. कविता के बदलते स्वरूप के दौर में छंदबद्ध रचना के बारे में आपके क्या विचार हैं?

कविता किसी विशेष विधा की मोहताज नहीं होती. मम्मट कहते हैं कविता में महत्वपूर्ण है व्यंजना. उसी में समाहित है संवेदना और कविता की बुनावट. आज कविता का बदलता रूप शिल्प के स्तर पर अधिक है. खेमों में बंटे हुए रचनाधर्मी नाम कमाने के लिए क्या कुछ नहीं कर रहे. जो बात अड़तालीस मात्रा के दोहे में कही जा सकती है उसके लिए मुक्तिबोध को अड़तालीस पन्ने भरने पड़े; फिर भी चांद का मुंह टेढ़े का टेढ़ा. ग़ज़ल भी कविता की एक विधा है. उसे आप छांदिक कहना चाहेंगे या अछांदिक.

आज ग़ज़लों की भरमार है, कोई अंगुली नहीं उठा रहा. उपहास उड़ाया जा रहा है दोहों का. मेरे दोहे रीति या नीतिगत दोहों से अलग हैं. ये समय की विद्रूपता को दर्शाते हैं. राष्ट्रीय बोध है. अतीत और वर्तमान के बिंब-प्रतिबिंब. पराधीनता और पराधीनता से मुक्ति के लिए बलिदानियों के उत्सर्ग की गाथा. साथ ही भविष्य के प्रति आस्था कि विश्व भूगोल को खगोलती हमारी पीढ़ियां नयी ऊंचाइयां प्राप्त कर सकें. वास्तविकता यह है कि अछांदिक कविता से कवि ऊब गये हैं. तब छंदबद्ध कविता का पुनरावर्तन कोई अचरज नहीं.

♦ मूल रूप से आप गीतकार हैं? अपने गीतों के बारे में कुछ बताइए.

प्रारंभिक गीतों में, रागात्मकता, गेय तत्व, छंद, संगीत विशेष रहा. एक केंद्रीय भाव की तरह-तरह से पुष्टि. इन गीतों में आशा-निराशा, आस्था-अनास्था, तनाव, अनिश्चय की कसक थी. 'मुझे मत जलाओ. मुझे मत बुझाओ. किसी का जलाया किसी का बुझाया हुआ मैं दिया हूं'; जैसा गीत पढ़ कर, संगीत प्रवीण मित्र सत्येंद्र बोस ने पूछा 'यह गीत तुमने लिखा है?' कोई संदेह? अरे इसे अच्छे-अच्छे संगीतज्ञ स्वर नहीं दे सकते. ये झपताल में गाया जाता है. लिख दिया सो लिख दिया. जीवन की नश्वरता, निस्सारता और सामाजिक विद्रूपताओं को चित्रांकित करते गीत लक्ष्मण रेखाओं का वर्जन करते चले, तो चलते ही गये. समय के बदलाव के साथ श्रमजीवियों, वंचितों के संघर्ष, राष्ट्रीय बोध जैसे स्वर अधिक मुखरित हुए, वहीं गीत विधा की बदलती बुनावट का सम्मोहन समकालीन गीतों की ओर ले आया. इसी की देन है, 'आदमी उत्पाद की पैकिंग हुआ.'

♦ आप काव्य जगत के मौन साधक हैं. इतनी सादगी, इतनी गहराई, इतनी विनम्रता और ज़िंदगी के इस पड़ाव पर भी गज़ब की रचनाधर्मिता, कैसे यह सब कर पाते हैं?

इस प्रश्न का क्या उत्तर दूं? आपने इतने अलंकारों से अलंकृत कर दिया है जिसके मैं योग्य नहीं हूं. मैं तो एक माध्यम हूं, लिखवाने वाले के स्वर को अक्षरों में पिरोने वाला दस्तकार. अंतःकरण में कोई जागृत हुआ. गुनगुनाया. उसकी गुनगुनाहट को शब्दायित करने का मेरा काम है, एक बिंदु विशेष तक. उसके बाद एक अक्षर जोड़ना भी संभव नहीं. जो जागा था, खर्राटे भर रहा होगा, पुनः जागने के लिए. वह जगता है, किसी शब्द की आहट से. विराट सृष्टि के सौंदर्य के संस्पर्श से. मैं अपने समस्त सृजन का श्रेय उसी अदृष्ट को देना चाहता हूं. रही बात ढलती आयु की, जिन्हें जाप करने की आदत हो, वे अंतिम सांस तक जाप करते रहते हैं अपने आराध्य का. यही हाल मेरा है.

♦ हाल ही में आपका काव्य संकलन 'आदमी उत्पाद की पैकिंग हुआ' का लोकार्पण हुआ है, इस पर कुछ प्रकाश डालें.

कथित संकलन पाठक का साक्ष्य जनसामान्य की ज़िंदगी से कराता है, जिसे वर्तमान व्यवस्था ने वैश्विक स्तर पर हाशिये पर पटक दिया है. एक ओर पूंजी का केंद्रीयकरण इसे नोंच-खरोंच रहा है, तो दूसरी ओर नवउपनिवेशवादी और विस्तारवादी शक्तियां आक्रामक हो रहीं हैं. बीच में पिस रहे हैं अविकसित अथवा विकासशील देशों के साधनहीन लोग. आकाश सी अभिलाषाएं ढोते लोग, जिनकी मुट्ठियां खाली हैं. रोज़नदारी पर काम करते राज–मज़दूर, साग-सब्ज़ी बेचने वाले, फुटपाथ पर बूटपॉलिश करते बच्चे, मोची, जुलाहे, बंजारे जो मात्र मशीन के पुर्जे बन कर रह गये हैं. बाज़ारवाद और संचार क्रांति के उत्कर्ष के साथ, मनुजता का जो अपकर्ष हुआ है, उसकी ओर ध्यानाकर्षित करते हैं संकलन के गीत, अपने निजी प्रतीकों, मुहावरों और

बिबंविधान द्वारा. इन्हें मैं नवगीत न कह कर समकालीन गीत कहता हूं. इसलिए कि ये नवगीत की मान्यताओं, उसके प्रतिमानों की परिधि से ये दूर हैं. विकृतियों के बीच जी रहा इन गीतों का नायक न निराश है न आस्था विहीन.

♦ कविता, दोहे, ग़ज़ल और गीतों के सृजन के बीच श्रीमद्भागवत्गीता का हिंदी और अंग्रेज़ी में अनुवाद करते हुए ६०० पृष्ठों का विशाल ग्रंथ आपने रचा. यह प्रेरणा कहां से मिली?

इसे संयोग कहूं या योगेश्वर कृष्ण का आदेश. मेरे छोटे भाई के परम धार्मिक मित्र, हमारी मां की मृत्यु संवेदना प्रकट करने आये. लौटते समय भाई ने मेरे काव्य संकलन की एक प्रति दे दी. उनका फ़ोन — गज़ब की लेखन शक्ति है, प्रणाम करता हूं. बिना मिले वापस न जायें. त्रियोदशी पर फिर आये. वही आग्रह बार–बार. मिलने पहुंचा. ढेर सारी प्रकाशित पुस्तकें, पांडुलिपियां. आप जितनी जो चाहें चुन लें. मेरी प्रार्थना है. श्रीमद्भागवद की अथवा इनमें से किसी ग्रंथ की व्याख्या हिंदी-अंग्रेज़ी में कर दें. समुचित मानदेय मिलेगा. दोनों हाथ जोड़े हुए कह रहे थे. अनजाने में, मेरा हाथ श्रीमद भगवद गीता पर. कभी चाह कर भी पूरी गीता नहीं पढ़ी. बोले इस कालजयी ग्रंथ पर सौभाग्यशाली ही काम कर सकते हैं. मेरा उत्तर — 'सौभाग्य मेरा होगा यदि बिना मानदेय के इस पर काम कर सकूं.' तीन साल में काम पूरा हुआ. प्रकाशन में विलंब. पूरी तैयारी कर दी. लेकिन, प्रकाशन से पूर्व वे चले गये.

♦ क़रीब सात दशकों से आप काव्य सृजन कर रहे हैं. कैसा लगता है? इस बीच कविता किस परिवर्तन के दौर से गुज़री है?

छोटे कस्बे, नगर, महानगर में कैसे क्या लिखा जा रहा है, इसे समीप से निरखते-परखते लिखता-पढ़ता रहा. अपने को स्थापित करने के लिए कवियों ने क्या नहीं किया. भारतीय कविता के प्रतिमानों को छोड़, आयातित विचार भूमि पर सृजन करते हुए कविता को नये-नये नाम दिये गये. कीर्कगार्ड, कामू, सात्र, लेनिनगार्ड और टैनिमन स्क्वायर के बुलडोज़र मार्गदर्शक हुए. जो फ्रांस, जर्मन, रूस में हुआ उसकी खोजबीन भारतीय साहित्य में की गयी. किसी को ख़ारिज किया. किसी को मान्यता. तुलसी ब्राह्मणवादी हैं, कबीर में आधुनिकता है, सबसे अधिक प्रबोधन. राष्ट्रीय वांग्मय की विवेचना के लिए आयातित मानदंडों को अपनाया गया. कविता को खंड-खंड कर अभियान पर अभियान. कोई प्रतीक को ले उड़ा. कोई बिंब का मुरीद. वैचारिकता, आधुनिकता, वैज्ञानिक सोच की उहापोह में फंस गयी मानवीय संवेदना की बात. 'नैन नचाय कही मुस्कायी. लाला फिर आइयो खेलन होरी' में न बिंब दीखता है, न 'बाज पराए पानि पे तू पंछी न मारी' में प्रतीक. शब्दों की नयी गठन, इसलिए कि ये सब मैले हो चुके हैं. शब्दों की नयी गढन चाहिए, शब्दों की गढन ऐसी कि हंसी आती है गढन देख कर. पसीने में भीगी को 'पसीनित' कहिए. खिलाड़ी को 'खिलंदड़े' रथ को 'रथु'; 'विकासना', 'रिपुता', 'रातगंधा' 'बतकन'. कहां तक गिनाऊं. छोड़िए, वरना मेरे लिए बुर्जुआ का तमगा तैयार है.

♦ आत्मकथा लिखने की कोई ख़ास वजह?

आत्मकथा कहूं या कुछ और. शीर्षक है 'अपने में अपने.' तीन सौ से अधिक पृष्ठों के इस आख्यान का नायक मैं नहीं हूं. अपितु अनेक महानायक हैं, जिन्होंने मेरे पिताश्री और मुझे उपकृत किया. कुछ हैं, कुछ चले गये. वंश के पुरोधा को यह एक विनम्र श्रद्धांजलि है. पूर्वजों के स्मरण से पवित्र कोई श्राद्ध नहीं होता. जो स्मृति में बस गये वे अमर हो जाते हैं.

♦ आप 'राष्ट्रीय कारवां' नामक पत्रिका का संपादन-संचालन करने जा रहे हैं, इसका स्वरूप कैसा होगा?

काव्य केंद्रित त्रैमासिकी : 'राष्ट्रीय कारवां' की प्रतिबद्धता है कि समकालीन कवियों का योगदान ऐसे आयोजन से समादृत हो जिसमें हर आयु वर्ग, जाति, धर्म और आस्था के कवि, बिना किसी वैचारिक पूर्वाग्रह तथा शिविरबद्धता के, अपनी अनुभूतियों को साझा कर सकें. आवश्यक है कि मानवीय मूल्यों के उन्नयन के लिए खुला आकाश मिले.

♦ नयी पीढ़ी के रचनाकारों के लिए कोई संदेश?

बाज़ार ने कविता को कितना ही निर्वासित कर दिया हो, उसका लेखन बहुतायत में हो रहा है.

अपरिमित मात्रा में यदि कुछ लिखा जा रहा है, तो वह कविता है. विधा कोई भी हो. पब्लिक स्कूलों से निकले 'संस्कारवान' हिंदी कविता को कितना समृद्ध करेंगे, कह नहीं सकता. अभिलाषा यही है कि नयी पीढ़ी कविता को अनछुए आयाम प्रदान करे. मैंने पूरा जीवन साहित्य की

(शेष भाग पृष्ठ ५० पर देखें...)

लघुकथा

गौ माता

✍ नीता श्रीवास्तव

उस बूढ़ी गाय की मोहल्ले में जो दुर्गति हो रही थी, वो सभी देख रहे थे मगर विरोध में कुछ कहने की जहमत कौन उठाता?

यह गाय... वही गाय है जो कुछ वर्षों पूर्व मोहल्ले में पटेल ख़रीद कर लाये थे. वे गाय की तारीफ़ों के पुल बांधते नहीं थकते थे. दस लीटर दूध देती है... छक कर दूध-दही-घी खाने के बावजूद भी बंदी बांधी और साल भर में तो क़ीमत वसूल करा दी.

धीरे-धीरे पूरे मोहल्ले की प्यारी गौ माता हो गयी. सबने प्यार से उसे लाली या कपिला पुकारना शुरू कर दिया. मोहल्ले भरके हर चौके में पहली रोटी लाली के नाम की पकती थी. लाली को भी पटेल सुबह-शाम मोहल्ले का फेरा लगवाते. सबकी दुलारी हो गयी थी लाली.

पटेल की औसारी बछिया और बछड़ों से आबाद होने लगी. उन्हें भी बेचने से पटेल को अतिरिक्त आय होती थी. मगर कब तक?

समय चक्र के आगे लाली भी हार गयी. लाली को भी बुढ़ापे ने चपेट लिया. लाली का दूध देने का क्रम बंद हुआ तो उसे खली चुनी तो दूर हरा-सूखा घास, भूसा देना भी बंद हो गया. इस तरह के बूढ़े पशुओं को पटेल, ''अटाला'' कहते है. भैंस अटाला होती है तो उन्हें कसाई के हवाले कर आख़री कमाई भी वसूल लेते हैं पर लाली तो गाय ठहरी... गौ माता.

कुछ संस्कार... कुछ से ज़्यादा लोकलाज. घर से हकाल भी नहीं सकते इसलिए खूंटे से बांधना ही छोड़ दिया. उसकी मर्जी ओसारे में बैठे या मोहल्ले में घूमे बेचारी गौ माता... दुलारी गौ माता... भूख प्यास से बेहाल गौमाता... हड्डी का ढांचा रह गयी है. वह चलती है तो उसके क़दम डगमगाते हैं. ठंड, गर्मी, बरसात की मार सहकर अपना चारा पानी तलाशती निराश होकर दिन में एक चक्कर तो वह अपने स्वामी के घर का ज़रूर काटती है मगर वहां अब उसकी ज़रूरत रही ही नहीं... पटेल उसे देखते ही हाथ उठा टच्-टच् कर हांक देते हैं, सुनते ही मुड़ जाती है गौ माता.

✆ २९४, देवपुरी कॉलोनी, गुजरखेड़ा,
महू (म. प्र.)-४५३४४१.
मो. : ९८९३४०९९१४

कविता

रोबोट

✍ मधुदीप

कल रात के ग्यारह बजे
जब तुम क्रियाशील थे
और मैं तुम्हारे प्यार में
उद्वेलित होने ही वाली थी,
कि तभी,
यकबयक मुझे लगा
तुम तो वहां मौजूद ही नहीं हो.
तुम्हारे मन के गह्वर में झांका
तो देखा...
तुम खोये थे
अपनी एम. एन. सी. के
टारगेट पूरा करने की उलझन में,
तुम खोये थे
अपने छोटे भाई की
बेरोज़गारी और आवारगी में,
तुम खोये थे
अपने बूढ़े बाप के
हार्निया के आपरेशन में.
यकबयक मेरे सारे अंग
शिथिल पड़ गये,
मगर तुम फिर भी नहीं रुके थे
तुम निरंतर क्रियाशील थे
और साथ ही मेरा मस्तिष्क भी
कि क्या हम
आदमजाद से रोबोट बन गये हैं?

✆ १३८/१६, ओंकारनगर-बी,
त्रिनगर, दिल्ली-११००३५

'कथाबिंब' का यह अंक आपको कैसा लगा कृपया अपनी प्रतिक्रिया हमें भेजें और साथ ही लेखकों को भी. हमें आपके पत्रों/मेल का बेसब्री से इंतज़ार रहता है.

- संपादक

ई-मेल : kathabimb@gmail.com

ताराबाई मोडक : भारत की 'मादाम मोंटेसरी'

✍ डॉ. राजम पिल्लै

''बाल-शिक्षा के कार्य को अंगीकार कर एकाग्रता से तपस्या करनेवाली महान विभूतियों में से ताराबेन मोडक एक हैं.''

– काका कालेलकर

(भूमिका 'ताराबाई व बालशिक्षण' - लेखक- स. आ. केतकर).

बाल-शिक्षा के क्षेत्र में भारत की मादाम मोंटेसरी की ख्याति पानेवाली ताराबाई मोडक (सन १८९२-१९७३) की जीवन-यात्रा व्यक्तित्व-विकास-यात्रा की कथा किसी वीरगाथा की तरह अद्‌भुत-रम्य है, किसी ग्रीक ट्रेज़ेडी की तरह उदात्त करुणाजनक है.

काका कालेलकर ने उनके बारे में कहा :

''ताराबाई के जीवन-विकास की ओर देखें तो भी हमें यह दिखाई पड़ता है कि, एक परिस्थिति से प्राप्त करने योग्य जो भी होगा, उसे संपूर्णतया पाकर, उसके अर्क-निचोड़ को हासिल कर तुरंत ही वे नये क्षेत्र में पहुंच गयी हैं. यह क्रम उनके समग्र जीवन में दिखाई पड़ता है. सरकारी नौकरी छोड़कर निजी संस्था में जाना, गुजरात में अनेक वर्षों तक काम करने के बाद और वहां बाल-शिक्षा के क्षेत्र में पहल करने के बाद गुजरात छोड़कर महाराष्ट्र में आना; मुंबई के बढ़ते-चढ़ते काम को छोड़कर बोर्डी, घोलवड़ की ओर जाना और आदिवासियों की सेवा करते-करते शिक्षा के क्षेत्र में क्रांतिकारी प्रयोग करना, इसी में ताराबाई की वृत्ति-स्वभाव की जीवंतता और ताज़गी दिखायी पड़ती है.''

ऐसा लग सकता है कि ताराबाई सोपान-दर-सोपान सफलता की ऊंचाइयों पर पहुंचती गयीं. यश, लोकप्रियता, 'पद्म भूषण' जैसा राष्ट्रीय सम्मान अर्जित करती गयीं और अपनी समकालीन तथा भावी पीढ़ियों के लिए एक 'रोल मॉडल'- एक 'आदर्श प्रतिमान' बनती गयीं. यह सब हुआ, पर सहज ही नहीं, उसके लिए भारी क़ीमत चुकाये बग़ैर नहीं. पर अभाव ने कभी उन्हें दीन नहीं बनाया, न ही पराजय ने पलायनवादी. ८० साल की उम्र तक, अंतिम सांस तक वे कर्मठ रहीं, कर्मवीर रहीं.

परिवार–परिवेश-परवरिश

ताराबाई को अपने परिवार, परिवेश और परवरिश से अनूठी, अनमोल सांस्कृतिक विरासत मिली थी जिसे उन्होंने अनेक गुना समृद्धतर बनाया और अनगिनत, जाने-पहचाने, अनाम-गुमनाम लोगों को उसमें सहभागी बनाया.

ताराबाई का जन्म १९ अप्रैल १८९२ को मुंबई में हुआ लेकिन लगभग पूरा बचपन इंदौर रियासत की राजधानी इंदौर में बीता. पिता श्री सदाशिव पांडुरंग केलकर सक्रिय, संकल्पबद्ध 'प्रार्थनासमाजी' थे. प्रार्थना समाज, नवजागरण काल के बंगाल के 'ब्रह्मसमाज' ही की तरह महाराष्ट्र में स्थापित संस्था थी, जिसके संस्थापक सदस्य जस्टिस महादेव गोविंद रानाडे, सर रामकृष्ण भांडारकर जैसे उदात्त प्रगतिशील दूरदर्शी नागरिक थे जो बाल-विवाह, जात-पात का भेद-भाव जैसी अंधरूढ़ियों का विरोध करते थे और विधवा-विवाह, स्त्री-शिक्षा, मानवतावादी विचारों को प्रोत्साहित करते थे. सदाशिवराव केलकर ने अपनी पत्नी की मृत्यु के बाद किसी विधवा से ही विवाह करने का संकल्प किया था और उन्होंने वरिष्ठ प्रार्थना समाजी सदस्यों की साक्षी के साथ एक विधवा से पुनर्विवाह किया जिसका नाम विवाहोपरांत रखा गया- 'उमाबाई'.

सदाशिवराव तथा उमाबाई की नौ संतानें हुईं. ताराबाई उन्हीं की दो कन्याओं में से एक थीं.

शिक्षा-दीक्षा :

इंदौर में मिशन स्कूल में ताराबाई ने हिंदी माध्यम से प्रारंभिक पढ़ाई की. फिर पुणे के प्रसिद्ध हुजूरपागा शाला में माध्यमिक स्तर की पढ़ाई की और फिर मुंबई के एलेक्ज़ेंड्रा गर्ल्स हाईस्कूल, एल्फिंस्टन कॉलेज़ और विल्सन कॉलेज़ में उच्चतर पढ़ाई की. स्कूली जीवन में उन्हें 'सामाजिक बहिष्कार' की आंच भी झेलनी पड़ी क्योंकि जिस प्रकार से बंगाल में 'ब्रह्मसमाजियों' को सनातन धर्म के बाहर का समझा जाता था वैसे ही महाराष्ट्र में प्रार्थना समाजियों को भी और उस पर से वे तो 'विधवा' की बेटी थीं सो पीने का पानी भी अलग ही मिलता था. लेकिन ताराबाई को तो धुन थी व्यक्तित्व व विकास की, उच्च-शिक्षा प्राप्त करने की और उच्चतर शिक्षा के काल में उनकी सहपाठिनियों में ईसाई, यहूदी, पारसी, यूरोपियन आदि थीं सो परिवार-परिवेश के विचारवादी, विवेकवादी प्रार्थना समाजी जीवन-प्रणाली की रोशनी में उनकी नज़रें व्यापक हुईं, मन उदात्त हुआ.

डॉ. राजम पिल्लै

इस बीच में परिवार में अनेक झंझावात आये; पहले पिता की और कुछ वर्षों में माता की मृत्यु हुई लेकिन पिता-माता की 'पुण्याई' ऐसी थी कि बच्चे अनाथ कभी नहीं हुए, धनाभाव से ताराबाई की पढ़ाई कभी नहीं रुकी!

विद्रोहिणी ताराबाई और एक दुखांत काल-खंड :

ताराबाई कुशाग्र बुद्धि की तेजस्वी, अध्ययनशील युवती थीं जिससे उनके व्यक्तित्व में एक अद्‌भुत आकर्षण था. परिवार के शुभचिंतकों में प्रार्थना समाज के सक्रिय समर्थक, प्रकांड विद्वान श्री वामन आबाजी मोडक भी थे; उनके पुत्र कृष्णाजी वामन मोडक और ताराबाई एक-दूसरे के प्रति आकर्षित हुए. कृष्णाजी सुदर्शन, ख़ुशमिज़ाज और बड़े सफल वकील थे; अमरावती में उनकी प्रैक्टिस खूब जमी हुई थी. दोनों की निकटता ताराबाई के अभिभावक बंधु को नापसंद थी क्योंकि वे कृष्णाजी के व्यक्तित्व के दूसरे एक पहलू को भी जानते थे और वह यह कि उन्हें शराब पीने-पिलाने का शौक़-व्यसन था और उसके चलते उनका भावी जीवन कभी भी ढलान से लुढ़क सकता था; वे अच्छे पति या पिता बनेंगे इसकी संभावना बहुत कम थी. पर ताराबाई को उस भावावेश की स्थिति में यह विकराल भविष्य दिखाई नहीं दिया.

ताराबाई ने फरवरी १९१५ को सगे-संबंधियों की सलाह-नसीहतों की परवाह न करते हुए, कृष्णाजी से रज़िस्टर पद्धति से विवाह किया. मुंबई में वे बी. ए. की परीक्षा उत्तीर्ण कर एम. ए. की पढ़ाई कर रही थीं. वे मुंबई छोड़कर श्री मोडक की सफल वकालत के स्थान अमरावती चली गयीं. उन्होंने एम. ए. की पढ़ाई जारी रखी. मोडक दंपति अमरावती के 'एलीट' — संभ्रांत वर्ग में हाथों-हाथ ले लिये गये, उनकी प्रेम-जोड़ी लोगों की स्पृहा और स्पर्धा का कारण बनने लगी. १९ जून १९२० को उनके सौभाग्य के सोने में सुहागा जुड़ गया; एक बेटी पैदा हुई, नाम रखा गया 'प्रभावती'— प्रभा. पिता की लाड़ली... पर नेपथ्य में भाग्य-चक्र कुछ और ही नियत कर रहा था. ताराबाई को पति के व्यसनों का पता नहीं चला होगा, यह अविश्वसनीय लगता है लेकिन जब पति के स्नेह-संबंध किसी दूसरी महिला से जुड़ने लगे और पति ने बार-बार वायदे तोड़े पर न व्यसन छोड़ा न विवाहेतर संबंध, तो एक दिन ताराबाई ने ललाट की कुंकुम-बिंदी पोंछ डाली, गले का मंगलसूत्र उतार दिया और नन्हीं प्रभा को लेकर पति के घर को छोड़कर निकल गयीं.

मराठी के नाटककार रत्नाकर मतकरी ने 'मोडक परिवार' के दुखांत पर एक नाटक लिखा है — 'घर तिघांचा हवा' (घर तीनों का हो') और दर्शाया है कि किस प्रकार दृढ़ व्यक्तित्व की ताराबाई और दुर्बल मनोबल के श्री मोडक के बीच बेटी 'प्रभा' का जीवन टूट गया, बिखर गया और अंततः बाद में युवती प्रभा ने मां की नींद की गोलियां खाकर आत्महत्या कर ली और श्री मोडक का जीवन और मृत्यु एक अकथनीय त्रासदी बन समाप्त हो गया!

ताराबाई मोडक को बाल-शिक्षा के क्षेत्र में भारत की 'मादाम मोंटेसरी' कहा जाता है, पर उनकी अपनी बच्ची ने उन्हें स्वीकार करने से इंकार कर दिया! 'पद्मभूषण' ताराबाई ने हमेशा सत्य कहा, जीया और पति-गृह से अलग होने के बाद अपने लिए जैसे नियति-निर्धारित बाल-शिक्षा के क्षेत्र में अपने को संपूर्णतया समर्पित कर दिया. उन्हें गुरू, दार्शनिक, वरिष्ठ बंधु के रूप में प्राप्त हुए श्री गिजुभाई बधेका जिन्होंने बाल-शिक्षा में विशेषकर प्राथमिक शिक्षा के लिए भगीरथ प्रयास कर सौराष्ट्र-गुजरात-भारत में एक युगांतरकारी इतिहास रच दिया. 'मोंटेसिरी बाल-शिक्षा' सिद्धांत

को भारतीय वातावरण के अनुरूप ढालकर 'बाल-मंदिर' का निर्माण करने में गिजुभाई बघेका अग्रगण्य थे.

डॉ. मारिया मोंटेसरी का क्रांतिकारी शिक्षा-दर्शन :

डॉ. मारिया मोंटेसरी का जन्म ३१ अगस्त १८७० को ज़र्मनी में हुआ और निधन ६ मई १९५२ को नीदरलैंड में. वे फिज़ीशियन थीं और सायेकेट्री उनका मुख्य अध्ययन विषय था. मानसिक रूप से विक्षुब्ध बच्चों का परीक्षण-अध्ययन करते-करते उन्होंने बाल-मनोविज्ञान और बाल-शिक्षा पर अनेक निष्कर्ष निकाले, प्रयोग किये और वे ही बाल-शिक्षा के क्षेत्र में विश्व-भर में 'मोंटेसरी प्रणाली' के रूप में विख्यात हुए और आज भी उन्हें बुनियादी नियमों के तौर पर मान्यता मिली हुई है.

मादाम मोंटेसरी ने बताया :

१) बचपन से लेकर छः वर्ष की उम्र तक बच्चे की ग्रहण शक्ति उद्‌बुद्ध रहती है २) बच्चे को शिक्षित-प्रशिक्षित करने के लिए, उसे अनुशासित करने के लिए उस पर दबाव डालने या दंडित करने से उसके प्रतिकूल, घातक परिणाम निकल सकते हैं. ४) माता-पिता, शिक्षक की प्राथमिक जिम्मेदारी है. बच्चे को एक स्वायत्त, स्वतंत्र व्यक्ति मानना और उसके विकास के लिए अनुकूल वातावरण घर, समाज तथा विद्या केंद्रों में निर्मित करना. ५) बाल-शिक्षा ही वह बुनियाद है जो किसी व्यक्ति के भावी-व्यक्तित्व को निर्मित करेगी इसलिए खेल-खिलौने, हंसी-ख़ुशी के माहौल में नन्हें-नन्हें बच्चों का लालन-पालन प्रशिक्षण होना चाहिए.

डॉ. मोंटेसरी ने सन १९०७ में ज़र्मनी में अपना पहला बाल-शिक्षा-केंद्र स्थापित किया; उन्हें सरकार से ख़ूब सराहना और सहायता मिली लेकिन द्वितीय विश्वयुद्ध ने सारे योरप के वातावरण को विषाक्त कर दिया, मारिया ज़र्मनी से निकलकर विश्व के अनेक देशों में गयी.

सन १९३९ में थियोसॉफ़िकल सोसाइटी ऑफ़ इंडिया ने डॉ. मोंटेसरी को भारत आने का और यहां पर बाल-पाठशालाओं की स्थापना करने का निमंत्रण दिया. उन्होंने लगभग एक दशक के दौरान यहां अनेक बाल-शिक्षा-केंद्र खोले, विशिष्ट प्रशिक्षित अध्यापक तैयार किये और लोगों में जागरूकता और जानकारी का प्रसार किया.

बच्चों का एक स्वायत्त व्यक्तित्व मानने का सिद्धांत विश्व के लगभग किसी भी देश में उसकी सामाजिक-सांस्कृतिक परंपरा में नहीं था इसलिए डॉ. मोंटेसरी को आलोचनाओं के प्रहार भी झेलने पड़े; विशेष रूप से भारत में वह विदेशी सत्ता से मुक्त होने के संघर्ष का काल था, सो किसी भी विदेशी विचार को ग्रहणीय, आदरणीय मानने में भारतीय मनीषा दुचित्ती हो जाती थी. अंततोगत्वा भारत में मादाम मोंटेसरी के बाल-शिक्षा-सिद्धांत को स्वीकार तो किया लेकिन उसे भारतीय संस्कृति और मूल्यों परिस्थितियों के अनुकूल बनाकर ही!

सौराष्ट्र के श्री गिजुभाई बघेका एक ऐसे मेधावी, समर्पित, शिक्षाविद् थे जिन्होंने इस दुष्कर कार्य को कर दिखाया. पूर्व प्राथमिक शिक्षा के इतिहास में उनका नाम अग्रिम पंक्ति में रखा जायेगा. पहले ही कार्यरत दक्षिणामूर्ति शिक्षा-संस्था से पूर्णतया जुड़कर उन्होंने विनयमदिंर, बालमंदिर की स्थापना की, अध्यापन-प्रशिक्षण केंद्र बनाये, विशिष्ट शिक्षण पत्रिका का संपादन-प्रकाशन किया, होस्टलों की स्थापना की और इस प्रकार पूरे सौराष्ट्र-गुजरात में बाल-शिक्षा क्षेत्र में अभिनव क्रांति ला दी. वे सदैव मादाम डॉ. मैगरिया मोंटेसवेरी के प्रति कृतज्ञ रहे कि उन्होंने बड़े साहस के साथ अपने सिद्धांतों का प्रतिपादन किया, उन्हें प्रायोगिक स्तर पर कारगर तौर पर उतारा और विश्वभर के बाल-मनोवैज्ञानिकों, शिक्षाविदों के समक्ष एक उज्ज्वल आदर्श प्रतिमान प्रस्तुत किया. सन १९५२ में मादाम मोंटेसरी की ८२ की उम्र में नीदरलैंड में मृत्यु हुई और तब तक बाल-शिक्षा के विशेषकर पूर्व माध्यमिक स्तर की शिक्षा के महत्व को विश्वभर के अभिभावक, सामाजिक कार्यकर्ता स्वीकार कर चुके थे और मादाम मारिया मोंटेसरी का नाम अविस्मरणीय हो चुका था.

ताराबाई का बाल-शिक्षण क्षेत्र में अतुलनीय योगदान :

ताराबाई ने सदैव अपने को शिक्षित, प्रशिक्षित और लक्ष्य कार्य में संलग्न रखा. गुजरात मुख्यतया पहले उनकी कर्मभूमि बना. गुजराती भाषा उन्होंने सीखी; वहां की महत्वपूर्ण शिक्षा-संस्थाओं में बड़े ज़िम्मेदार पद संभाले और फिर गिजुभाई बघेका के दक्षिणामूर्ति संस्थान से जुड़कर किये जाते बाल-शिक्षा के कार्य में, जो एक बार जुड़ीं तो फिर वही उनका एकमात्र कर्मक्षेत्र बन गया. और फिर महाराष्ट्र में उन्होंने स्वतंत्र रूप से उस कार्य की नींव डाली, उसे विकसित किया और इतना सुदृढ़ बनाया कि आज भी उनके द्वारा स्थापित संस्थाएं जीवित हैं, जीवंत हैं, प्रगति-पथ पर आगे-आगे चल रही हैं.

महाराष्ट्र में ताराबाई का अपूर्व ऐतिहासिक कार्य :

ताराबाई ने गिजूबाई के साथ लगभग ९ वर्ष काम

किया. सन १९३१ को व्यक्तिगत कारणों से उन्हें सौराष्ट्र-गुजरात की अपनी व्यापक, विस्तृत गतिविधियों को रोकना पड़ा और फिर महाराष्ट्र की अमरावती में उन्होंने मराठी शिक्षण-पत्रिका का प्रारंभ सन १९३२ में किया, प्रौढ़-शिक्षा का काम हाथ में लिया और समाज के पिछड़ी जाति के लोगों के बच्चों के लिए 'बालवाड़ी' की स्थापना की, वहीं, उन्हीं के बीच किसी छोटी-सी जगह में.

शिशु विहार की स्थापना :

३१ अगस्त १९३६ को मुंबई के दादर में ताराबाई मोडक ने 'शिशु विहार' नामक संस्था की स्थापना की जो आज भी कार्यरत है. बाल-शिक्षा के क्षेत्र में इस संस्था को अग्रगण्य होने का सम्मान प्राप्त है.

'बुनियादी तालीम' का समावेश :

यह आज़ादी की लड़ाई का युग था; गांधीजी का चिंतन और नेतृत्व राजनीति के साथ-साथ समाज की अन्य गतिविधियों को भी प्रभावित कर रहा था. गांधीजी स्कूलों-कालेजों की औपचारिक डिग्री केंद्रित पढ़ाई को नहीं वरन स्वावलंबी, देशभक्त, व्यक्तित्व-निर्माण को अधिक महत्व देते थे. उन्होंने 'बुनियादी तालीम' के अंतर्गत एक ऐसी शिक्षा-प्रणाली को कार्यान्वित करने का उत्तरदायित्व अपने सहयोगियों, अनुयायियों को सौंपा था. श्री गिजुभाई के सान्निध्य में और स्वयं अपने ही निर्णय से ताराबाई राष्ट्रीय आंदोलन का भी हिस्सा बनीं और उन्होंने अपने शिक्षा-केंद्र में, पाठ्यक्रम में सामान्य जनों, ग्रामीण जनों से संपर्क रखनेवाले कार्यों का समावेश किया था.

दादर शिशु-विहार, अध्यापन मंदिर, राजनीति से सीधे नहीं जुड़ा था लेकिन जन-सेवा, राष्ट्र-सेवा का मूल-लक्ष्य उसके समक्ष निरंतर रहा.

ग्रामीण भागों में कार्य :

गिजुभाई के नूतन बाल शिक्षण संघ के कार्यों के नेतृत्व की ज़िम्मेदारी जब ताराबाई पर आयी तब पूर्वनिर्धारित लक्ष्य के अनुसार ग्रामीण भागों में बाल-शिक्षा, प्रौढ़-शिक्षा के कार्यों को ले जाने की मुहिम शुरू हुई. 'बालवाड़ी', 'आंगनवाड़ी' शिक्षा-व्यवस्था इसी का परिणाम थीं. आदिवासी क्षेत्रों में कार्य की शुरुआत का अर्थ ही था अनेक प्रकार की ऊंच-नीच, छूत-अछूत जैसी रूढ़ियों को अस्वीकार करना और शुद्ध मानवतावादी दृष्टिकोण से मानवीय सामाजिक सरोकारों को निभाना.

महाराष्ट्र के कोसबाड और बोर्डी जैसे आदिवासी क्षेत्रों में श्रीमती ताराबाई मोडक, उनकी अनन्य सहयोगी श्रीमती अनुताई वाघ ने जो कार्य न्यूनतम सुविधाओं के साथ किये और सफलताएं पायीं वे महाराष्ट्र ही नहीं भारत-भर के बाल-शिक्षा, आदिवासी-विकास आदि के कार्यों के लिए एक अनुकरणीय दीप-स्तंभ बनीं!

श्रीमती ताराबाई मोडक को सन १९६२ में 'पद्म-भूषण' के राष्ट्रीय सम्मान से अलंकृत किया गया. ३१ अगस्त १९७३ को ताराबाई का देहावसान हुआ. व्यक्तिगत जीवन के ज्वार-भाटों ने उन्हें अनेक बार झकझोरा ज़रूर पर लक्ष्य से विचलित नहीं किया. अंतिम घड़ी तक, जर्जर शरीर के साथ वे कार्य करती रहीं.

ताराबाई मोडक को इसीलिए भारतीय बाल-शिक्षा क्षेत्र की 'मादाम मोंटेसरी' का ख़िताब मिला हुआ है. किसी शासन द्वारा प्रदत्त नहीं वरन जनता द्वारा शिक्षा-विदों द्वारा!

६०१–ए, रामकुंज को. हॉ. सो.,
रा. के. वैद्य रोड, दादर (प.),
मुंबई-४०००२८.
मो.:९८२०२२९५६५.
ई-मेल : pillai.rajam@gmail.com

सागर-सीपी

शेष भाग....

श्रीवृद्धि में होम कर दिया. बिना आयुध के साधारण सिपाही की तरह बड़ी-बड़ी चुनौतियों का सामना किया. हार नहीं मानी. अपने मूल्यों की क़ीमत पर समझौते नहीं किये. चला तो सबको साथ लेकर चला, किसी को धक्का देकर नहीं. बात समाप्त करने से पहले अपनी ग़ज़ल का टुकड़ा सुनाना चाहूंगा... 'निर्मल नदी की धार रुकना नहीं सीखा. शालवन का पेड़ झुकना नहीं सीखा. मैं समर के अंत तक लड़ता रहूंगा. ज़िंदगी में सखे हारना नहीं सीखा.'

रो हॉउस-३, गोल्ड माइन,
१३८, १४५ सेक्टर-२१,
नेरुल (पू), नवी मुंबई-४००७०६
मो. ९१६७१४८०९६
ईमेल :- manohar.abhay03@gmail.com

अशोक वशिष्ठ
सी-६०३ , सागर रेसीडेंसी
प्लॉट-९८/९९; सेक्टर-२७
नेरूल (पूर्व), नवी मुंबई-४००७०६
मो. ९८६९३३७६१८
ईमेल : akvashu@gmail.com

पाठकों में हलचल पैदा करने वाला उपन्यास

✍ जयराम सिंह गौर

दग़ैल (उपन्यास) – **डॉ. रूप सिंह चंदेल**
प्रकाशक - भावना प्रकाशन, १०९ ए पटपड़गंज, दिल्ली-११००९१. मूल्य - ५००/-

उच्च शिक्षा जगत में व्याप्त भ्रष्टाचार एक चुनौती के रूप में देश के समक्ष उपस्थित है. प्रोफ़ेसरों से लेकर नीचे स्थित कर्मचारियों तक में यह किसी नासूर की भांति प्रविष्ट हो चुका है. विश्वविद्यालय से लेकर कॉलेज़ों में नियुक्तियों में रिश्वतखोरी, भाई-भतीजावाद, जातिवाद आदि कितनी ही ऐसी बुराइयां हैं जिनसे देश को भावी कर्णधार देने वाले ये संस्थान आज संक्रमण का शिकार हैं. वाम और दक्षिण विचारधारा वालों के चुंगल में फंसे इन संस्थानों में जिस प्रकार की अराजकता है वह अत्यंत चिंतनीय है. यहां शोधार्थियों का अनेक प्रकार से शोषण होता है. यदि छात्र है तो उसे अपने निर्देशक के लिए वे कार्य करने होते हैं जिनकी कल्पना करके रोंगटे खड़े हो जाते हैं. उसके घरेलू कामों से लेकर उसके बाहरी कार्य तक. और यदि कोई छात्रा है तो उसे तलवार की धार पर चलना होता है. दैहिक शोषण यहां आम बात है. और शायद यही कारण है कि छात्राएं या तो बीच में ही शोध छोड़ देती हैं या किसी महिला प्रोफेसर को निर्देशक के रूप में चुनती हैं. आश्चर्यजनक है कि हिंदी लेखकों का उच्च शिक्षण संस्थानों की इस गंभीर बीमारी की ओर ध्यान क्यों नहीं गया! संभव है कि इसका मुख्य कारण यह रहा हो कि लेखकों का एक बड़ा भाग स्वयं उच्च शिक्षण से जुड़ा हुआ है और वे स्वयं इस बीमारी का शिकार हों. अधिकांश विश्वविद्यालयों और कॉलेज़ों में देखा गया है कि नयी नियुक्ति किसी न किसी परिचित की ही होती है या किसी का बेटा-बहू, पत्नी या साली नियुक्ति पाते हैं. दिल्ली विश्वविद्यालय जैसी जगहों में यह आम बात है तो राज्य के विश्वविद्यालय और कॉलेज़ों में इस सबके साथ धन अर्थात रिश्वत का खेल चलता है. एक सहायक प्रोफ़ेसर के लिए बीस लाख तक पुजाने होते हैं. इसके लिए यू. ज़ी. सी. कितने ही नियम और क़ानून बना ले, कितनी ही नेट परीक्षाएं कोई उत्तीर्ण कर ले, कितनी पी-एच. डी, डी. लिट की उपाधियां अपने थैले में लिये कोई अभ्यर्थी साक्षात्कार देता घूमे, लेकिन चयन उसी का होता है जिसका कोई गॉड फादर या तो चयन समिति में होता है या उसकी जेब में लाखों की राशि होती है. इन तमाम मुद्दों को वरिष्ठ कथाकार रूपसिंह चंदेल ने अपने नवीनतम उपन्यास 'दग़ैल' में बहुत ही गंभीरता के साथ उठाया है.

'दग़ैल' रूपसिंह चंदेल का दसवां उपन्यास है. चंदेल की यह विशेषता है कि उनके पास विषय वैविध्यता है और है सूक्ष्म पर्यवेक्षण दृष्टि. इससे पूर्व उनके 'गलियारे' उपन्यास ने अभूतपूर्व चर्चा बटोरी थी, जिसमें उन्होंने उच्चाधिकारियों और उनके मातहतों द्वारा किये जाने भ्रष्टाचार को बहुत ही सूक्ष्मता से व्याख्यायित किया है. मेरा विश्वास है कि उस विषय को उतनी गंभीरता से अभिव्यक्त करने वाला हिंदी में कोई अन्य उपन्यास नहीं है. जिस प्रकार 'गलियारे' सरकारी तंत्र में शीर्ष से सतह तक व्याप्त भ्रष्टाचार को चित्रित करने वाला पहला मौलिक उपन्यास है तो उसी प्रकार उच्च शिक्षण संस्थानों में व्याप्त भ्रष्टाचार को उद्घासित करने वाला 'दग़ैल' वैसी ही एक उल्लेखनीय कृति है. मैंने चंदेल जी को जितना भी पढ़ा है उसके आधार पर मैं बेहिचक कह सकता हूं कि वह एक क्रांतिकारी कथाकार हैं, जो अपने उपन्यासों/कहानियों के माध्यम से समाज में व्याप्त विद्रूपताओं से पाठक को रूबरू करवाते हैं और उसे सोचने के लिए विवश करते हैं. इसीलिए समकालीन लेखकों में उनकी पृथक पहचान है. कहना उचित होगा कि चंदेल व्यवस्था विरोधी लेखक हैं. वे सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक आदि समस्त विद्रूपताओं को न केवल बेनकाब करते हैं बल्कि गहन चोट करते हैं.

'दग़ैल' यद्यपि विशेष रूप से विक्रांत और उसकी पत्नी विनीता अग्रवाल की कहानी कहता है. लेकिन इसमें

तीन अन्य ऐसे पात्र भी जुड़ते हैं जिनके माध्यम से लेखक ने साहित्य और पत्रकारिता की पतनशील स्थितियों को भी उजागर किया है. ये पात्र हैं दिल्ली विश्वविद्यालय के एक सांध्य महाविद्यालय में हिंदी प्रोफ़ेसर सुशील राय, दूसरा है कथाकार और पत्रकार प्रेमप्रकाश और तीसरी पात्रा है शालिनी शुक्ला जो महत्वाकांक्षी नवोदिता कवयित्री है और अपनी महत्वाकांक्षा के चलते वह उपरोक्त तीनों ही पुरुष पात्रों द्वारा स्वैच्छया यौन संबंध स्थापित करती है. अपनी यौनिकता को वह साहित्य के शिखर को छूने का माध्यम मानती है. अपनी ऐसी महत्वाकांक्षा को तुष्ट करने की आकांक्षी पात्राओं के लिए शालिनी शुक्ल का चरित्र एक प्रतीक रूप में चित्रित हुआ है.

उपन्यास विश्वविद्यालय की आंतरिक राजनीति, प्रोफ़ेसरों के ईर्ष्या-द्वेष, छात्रों की स्थिति आदि तमाम विषयों पर प्रकाश डालता है. यह स्पष्ट घोषणा करता है कि जब तक विषय का विभागाध्यक्ष नहीं चाहता किसी भी अभ्यर्थी का चयन किसी भी कॉलेज़ या विश्वविद्यालय में संभव नहीं. इसके लिए वे सब हथकंडे अपनाये जाते हैं जो एक स्वस्थ लोकतंत्रातिक देश के उच्च शिक्षण संस्थानों को दाग़दार बनाते हैं. ऐसे ही हालातों के चलते डॉ. नवीन शुक्ल का चयन गोरखपुर विश्वविद्यालय के एक कॉलेज़ से दिल्ली विश्वविद्यालय में रीडर पद पर होता है. शुक्ल एक कमज़ोर चरित्र व्यक्ति है. विनीता अग्रवाल उसकी शोधछात्रा है, जिसे शोध के अंतिम दौर में वह परेशान करता है और उसे यौन संबंध के लिए विवश करना चाहता है. एक दिन कार्य देखने के बहाने वह उसे अपने निवास में बुलाता है. पहले से ही सतर्क विनीता मिर्च पॉउडर का पैकेट साथ लेकर जाती है और वह मिर्च का पैकेट डॉ. शुक्ल की आंखों में झोंक अपनी अस्मिता की रक्षा करती है. विनीता अग्रवाल और विक्रांत एक समय रिसर्च फ़्लोर में एक साथ बैठकर शोध कार्य करते थे, लेकिन विक्रांत विभागाध्यक्ष का प्रिय होने के कारण एक महाविद्यालय में नियुक्ति पा जाता है. फिर भी वह विनीता से मिलने विश्वविद्यालय पुस्तकालय जाता रहता है. डॉ. शुक्ल प्रकरण दोनों को और निकट ला देता है. विक्रांत के प्रयास से विनीता का गाइड बदल जाता है और विनीता अपने परिवार वालों के घोर विरोध के बावजूद विक्रांत से शादी कर लेती है.

शादी से पहले तक विनीता अग्रवाल को यह जानकारी नहीं होती कि विक्रांत सिगरेट और शराब का आदी है. वह हर शनिवार अपने कुछ मित्रों के साथ, जो विभिन्न महाविद्यालयों में हिंदी प्राध्यापक थे, शराबनोशी करता है. यहां से दोनों के मध्य तनाव की स्थिति बननी शुरू होती है. इस मध्य विनीता भी पी. जी. डी. ए. वी. कॉलेज़ में प्राध्यापक नियुक्त हो जाती है और इसमें विक्रांत की अहम भूमिका होती है. विनीता के विरोध को दरकिनार करते हुए विक्रांत घर में ही महफ़िलें जमाने लगता है. लेकिन तब तक विनीता दो बच्चियों की मां बन चुकी होती है और वह स्थितियों से समझौता करने के लिए विवश होती है. बच्चियों की देखभाल के लिए वह सुनीता नाम की एक युवती को विक्रांत के कॉलेज़ से लौटने के समय तक के लिए रख लेती है. यहीं प्रकट होता है विक्रांत का लंपट रूप. वह सुनीता को विश्वविद्यालय में चतुर्थ श्रेणी नौकरी दिलाने का सब्ज़बाग दिखाकर यौनशोषण करने लगता है. परिणामतः वह गर्भवती होती है और एक परिचित डॉक्टर से वह उसे गर्भमुक्त करा देता है, लेकिन सुनीता स्वस्थ नहीं हो पाती और अर्द्धविक्षिप्त होकर वह एक दिन आत्महत्या कर लेती है.

विनीता बेटियों के लिए क्रेच खोज लेती है. सुनीता का काम पर न आना उसमें अनेक आशंकाएं उत्पन्न करता है और एक दिन डॉक्टर उसे सुनीता के गर्भपात की बात बता देती है और यह भी कि उसे लेकर विक्रांत उसके पास गये थे. विनीता और विक्रांत के संबंधों में दरार पड़ने लगती है. और एक दिन जब वह विक्रांत को अपने ही किराए के घर में अपने ही बेड पर शालिनी शुक्ल के साथ हमबिस्तर देखती है, हंगामा खड़ा हो जाता है. विनीता बेटियों के साथ उस घर को छोड़ देती है और अमर कॉलोनी में किराए पर रहने लगती है. अंततः दोनों का तलाक हो जाता है. कोर्ट के आदेश पर विक्रांत को बेटियों से मिलने की अनुमति होती है. बड़ी बेटी स्मृति बड़ी होने के बाद पिता के साथ रहने लगती है, जबकि छोटी मां के साथ जो उच्च शिक्षा के लिए बंगलौर चली जाती है और वहीं नौकरी करने लगती है. स्मृति अंग्रेज़ी में एम. ए. बी. एड. करके एक निजी हायर सेकंडरी स्कूल में अध्यापिका नियुक्त हो जाती है.

शालिनी शुक्ल एक आई. ए. एस. की पत्नी थी, लेकिन कवयित्री बनने के चलते वह सुशील राय के संपर्क में आयी जो कभी उसके पति का मित्र था. सुशील राय से संबंध स्थापित होने के कारण उसका पति से तलाक हो

जाता है. लेकिन शालिनी का आकर्षण युवा प्रेमप्रकाश की ओर होता है जो सुशील राय के निकट था. प्रेमप्रकाश जे. एन. यू. में पढ़ते हुए वहां के पुस्तकालय में कार्यरत एक युवती को अपने जाल में फंसा चुका था. शालिनी भी एक दिन उसकी अंक शायिनी बनती है. कवि कथाकार और यदा-कदा चित्रकारी का शौक़ीन प्रेमप्रकाश पत्रकारिता में जाता है और वहां लंपटता के सभी रिकॉर्ड तोड़ता है. अंततः उसकी दृष्टि विक्रांत की बेटी स्मृति पर टिकती है. उम्र में अपने से बहुत बड़े प्रेम प्रकाश की ओर स्मृति भी आकर्षित होती है, क्योंकि बहुत पढ़ने वाले प्रेमप्रकाश से उसे बौद्धिक संतुष्टि मिलती है. शादी-शुदा बच्चों वाला प्रेमप्रकाश पत्नी को पैर की जूती समझता है. वह स्मृति से पत्नी को तलाक देकर शादी करने का झांसा देकर उसके साथ संबंध स्थापित करता है और एक दिन जब स्मृति को इस बात का एहसास होता है कि वह केवल उसका इस्तेमाल कर रहा है वह उसे मारने का प्रयत्न करती है, लेकिन स्वयं मारी जाती है.

'दग़ैल' में चित्रित चरित्र पाठक के समक्ष महाप्रश्न छोड़ते हैं. ख़ासकर विक्रांत का चरित्र, जिसकी अपने लिए जीने की चाहत उसके परिवार को ही तबाह कर देती है. हम प्रेमप्रकाश और सुशील राय जैसे चरित्रों को अपने आसपास देख-पहचान सकते हैं. बधाई है 'दग़ैल' के लेखक को जिन्होंने अपने उपन्यास के माध्यम से समाज को उच्च शिक्षा जगत, पत्रकारिता और साहित्य के कटु यथार्थों से अवगत कराने का महत्तम प्रयास किया है.

उपन्यास पढ़ते समय लगता है कि सारी घटनाएं सामने घटित हो रही हैं. जिस गंभीरता से घटनाओं का चित्रण हुआ है उसे देख कर लगता है कि यह लेखक का भोगा हुआ यथार्थ है या लेखक का परकाया प्रवेश. उपन्यास में कहीं ऐसा नहीं लगता कि जबरन कुछ ठूंसा गया है. सारा चित्रण स्वाभाविक है.

उपन्यास में भरपूर किस्सागोई शैली,पात्रानुकूल भाषा, कथानक का सरल प्रवाह, चुटीले संवाद, चित्रात्मकता और पठनीयता नैसर्गिक रूप से विद्यमान है. उपन्यास पाठक को अंत तक बांधे रखता है तथा अपनी भावभूमि पर उसको खड़ा कर देता है. मैं पूर्ण विश्वास के साथ कहना चाहता हूं कि 'दग़ैल' पाठकों के मन में हलचल पैदा करेगा और उन्हें सोचने के लिए विवश अवश्य करेगा. समकालीन उपन्यास साहित्य में चंदेल जी ने एक और मील का पत्थर गाड़ दिया है. इतने उत्कृष्ट उपन्यास के लिए उन्हें हार्दिक बधाई.

१८०/१२ न्यू लेबर कॉलोनी,
किदवई नगर, कानपुर- २०८०२३.
मो.९४५१५४७०४२

दिल को छूने वाली कहानियां

चंद्रकांता अग्निहोत्री

छुअन (कहानी संग्रह) – **विकेश निझावन**
प्रकाशक - विश्वास प्रकाशन, ५५७-बी, सिविल लाइन्स, अंबाला शहर (हरि). मूल्य - ३२५/- रु

ओशो ने कहा है, ''जब तुम्हारी रचनात्मकता उस शिखर को छू लेती है जहां तुम्हारा पूरा जीवन ही रचनाधर्मिता से गुंथ जाये तो तुम्हारे अंदर सबसे बड़ा रचनाकार, अर्थात परमात्मा निवास करने लगता है... जो कर रहे हो उसी से प्रेम करो, जब कर रहे हो उसी में अंतर्ध्यान हो जाओ, फिर चाहे जो भी हो...''

ओशो के ये शब्द शायद रचनात्मकता के लिए कहे गये सबसे सुंदर शब्द होंगे. एक रचनाकार का उस चरम बिंदु को छू लेना जिस पर सृष्टि रचनेवाला स्वयं सुशोभित है, किसी भी चमत्कार से कम नहीं है.

कथाकार विकेश निझावन ने अपनी कहानियों में कुछ ऐसी ही रचनात्मकता का परिचय दिया है. इन कहानियों को पढ़ कर लगता है कि यह मात्र कोरी कल्पनाएं न हो कर ज़िंदगी के अलग-अलग पहलुओं से जुड़ी तमाम ऐसी घटनाएं हैं जिन्हें हर कोई अपने आस-पास घटता हुआ पाता है. इतना सजीव और मार्मिक चित्रण तो वही कर सकता है जो स्वयं जीवन के ज्वार-भाटे के साथ उठता और गिरता रहा हो या फिर जिसने किसी किश्ती में बैठ कर नहीं, बल्कि लहरों की सवारी कर के संसार रूपी सागर को पार करने की जुर्रत की हो. एक शांत, समतल, सपाट समुंदर पर एक ऐश्वर्य जड़ित बड़े से जहाज पर सवारी कर इस जीवन रूपी सागर को पार कर लेना किसी कहानी को जन्म नहीं देता. जो लोग चांदी का चम्मच मुंह में ले कर पैदा होते हैं और मर जाते हैं, वे भले ही अपना नाम इतिहास में लिखवा जाते होंगे, परंतु उनके जीवन से कोई कहानी जन्म नहीं लेती. कहानी तो तब जन्म लेती है जब

कोई ऐसा ही राजकुमार चांदी के चम्मच का मोह त्याग, समस्त सुखों को तिलांजलि देकर ज्ञान की खोज में जंगल में तपस्या करने हेतु निकल पड़ता है और फिर बुद्ध हो जाता है. वो खोजना चाहता है कि बीमार और बूढ़ा व्यक्ति क्यों बीमार या बूढ़ा है? मृत्यु क्या है? इन सब मुसीबतों का हल क्या है?

विकेश की कहानी कहां से शुरू होकर कहां समाप्त होगी, इसका अनुमान लगाना असंभव-सा प्रतीत होता है. जिस तरह ज़िंदगी की पटरी अचानक मुड़ती है और आने वाले पल का आभास ही नहीं हो पाता, वैसे ही इन कहानियों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि पढ़ने वाले की उत्सुकता बराबर बनी रहती है. वह चाह कर भी कहानी को बीच में नहीं छोड़ सकता.

ये कहानियां जीवन का ऐसा जानदार चित्रण हैं जिसमें पाठक अनचाहे ही उस घटनाक्रम का एक पात्र हो बैठता है. अंग्रेज़ी के प्रसिद्ध साहित्यकार एवं आलोचक सैमुएल टेलर कॉलरिज़ का कथन है कि जब हम किसी कथानक का मंचन देख रहे होते हैं अथवा उसे पढ़ रहे होते हैं तो हम एक तरह की प्रक्रिया से गुज़र रहे होते हैं, जिसे उसने अपनी मर्ज़ी से अपने अविश्वास को त्याग देने का नाम दिया है. इसका मतलब यह हुआ कि यह जानते हुए भी कि यह पात्र व घटनाक्रम काल्पनिक है, हम इस अविश्वास को त्याग कर विश्वास कर लेते हैं कि नहीं, यह सब सच है. अगर हम ऐसा न करें तो हम कथानक का ज़रा भी आनंद नहीं ले पायेंगे. परंतु विकेश कि कहानियों में प्रथम दृष्टया यह काल्पनिकता जैसा अविश्वास पैदा ही नहीं होता और अगर होता भी है तो पाठक को पता ही नहीं चलता कि कब उसने इस अविश्वास को तिलांजलि दी और कब वह कथानक का हिस्सा बन बैठा. यहां तक कि कहानी समाप्त होने के बाद भी हम स्वयं को वहीं खड़ा पाते हैं और वहां से निकलने के लिए बहुत ज़ोर लगा कर स्वयं को विश्वास दिलाते हैं कि कथानक तो कथाकार द्वारा रचित एक छद्म संसार था, जो आपकी अपनी ज़िंदगी को छू कर कब का निकल गया. 'छुअन' जिस कहानी पर पुस्तक का नामकरण हुआ है, एक ऐसी ही कहानी है. एक बदसूरत लड़की, सौतेली मां, बेबस बाप और निष्ठुर भगवान के बीच चलती कशमकश, साथ ही जवान देह का मोल-भाव करने को लालायित समाज का एक वर्ग! क्या यही ज़िंदगी की सच्चाई नहीं है? चारों ओर दीवारें हैं जिनमें सांस लेना दूभर हो जाता है, एक झोंका हवा का आने जाने के लिए कोई खिड़की या दरवाज़ा भी नहीं. फिर अंत में कहीं से एक ईंट दरकती है और एक अपंग व्यक्ति विवश वृंदा को एहसास दिला देता है कि वो अभी मरी नहीं है. एक क्षण पहले तक जो पाठक भगवान की निष्ठुरता को कोस रहा था, वही अंततः उसके अस्तित्व को स्वीकार करने लगता है.

एक अन्य कहानी 'गांठ' प्रतीकात्मक रूप से हमारे मन के अंदर की गांठों को अभिव्यक्त करती है. ये गांठें भी बड़ी अजीब हैं, जिनमें सबसे ज़्यादा तकलीफ़देह संदेह अथवा शक की गांठ होती है. शक एक ऐसा रंगीन चश्मा है जिसके अंदर से देखने वाले को वास्तविकता कहीं नज़र नहीं आती. जब यह शक एक रोग का रूप धारण कर लेता है तो क्या होता है, ज़रा इस बातचीत को देखें —

'अब तो वह मरने वाला होगा?' बाउजी कह रहे थे.

'नहीं, वह नहीं मर सकता.'

'तुम्हीं तो कह रही थी, उसका रोग बढ़ गया है.'

'उस रोग से कोई नहीं मर सकता, उसने लिखा है.'

'अगर उससे कोई नहीं मर सकता, फिर चिंता किस बात की है?'

'उससे कोई दूसरा मर सकता है.'

वाह! क्या विश्लेषण किया है लेखक ने!

एक दूसरी बानगी देखें, कहानी का नाम है 'सिलवटें'

'...श्रीधर भला एक दिन में मरा है क्या? उसने तो मौत का एक-एक कतरा पिया है और पिछले बीस वर्षों से वह इस ज़हर को बराबर पी रहा था.' अब इन पंक्तियों में कितनी बड़ी सच्चाई छिपी हुई है कि कोई भी एकदम से नहीं मरता. ज़िंदगी जीते हुए प्रतिदिन कुछ ऐसा घटित होता रहता है, जिससे हमारे अंदर रोज़ थोड़ा-थोड़ा करके कुछ मरता रहता है.

एक असहाय और अनाथ बच्चे के साथ समाज कैसे पेश आता है, इसका एक रूप हमें कहानी 'आश्रम' में देखने को मिलता है. हम किसी भी आश्रम की चारदीवारी के अंदर झांक कर तो नहीं देख सकते, लेकिन विकेश की कहानी हमें वह सब दिखाने की क्षमता रखती है और हम सन्न रह जाते हैं, उस व्यक्ति का घिनौना चेहरा देख कर, जिस पर एक अध्यापक होने का लेबल लगा है. दानव किस-किस रूप में समाज में छिपे बैठे हैं, यह सब विकेश

जैसे लेखक की क़लम ही हमें बता सकती है.

ऐसे कितने ही उद्धरण इन कहानियों में विद्यमान हैं जिनके बारे में लिखने को मन तो करता है. पर फिर मैं यह भी सोचता हूं कि कहीं मैं यह सब लिख कर पाठक के साथ ज़्यादती तो नहीं कर रहा? अगर मैं सब यहीं बता दूंगा तो पुस्तक पढ़ने की उत्कंठा जाती रहेगी और वो उत्सुकता जिसके वश पाठक पढ़ने की लालसा रखता है, कहीं न कहीं अधूरी रहेगी. मैं उम्मीद करता हूं कि विकेश जी का यह सफ़र जो सारिका, सरिता और धर्मयुग जैसे जाने कितने मील के पत्थरों को पार करता हुआ यहां तक पहुंचा है, वह आगे भी चलता रहेगा और वह अपनी पत्रिका 'पुष्पगंधा' के माध्यम से अपनी कहानियों की सुगंध दूर-दूर तक फैलाते रहेंगे.

पंचकूला, मो.: ९८७६६५०२४८

आमने-सामने

शेष भाग...

प्रिय हैं. चाहे प्रारंभिक उपन्यास 'मिठलबरा की आत्मकथा' हो या मेरा यह आठवां उपन्यास 'वो एक सत्यान्वेषी' हो. इन सबको लिख कर लगता है कि मैंने अपने लेखक होने का फर्ज निभाया है. वैसे सर्वाधिक संतुष्टि की बात करूं, तो 'एक गाय की आत्मकथा' लिख कर परम संतोष हुआ. भारतीय गायों की दुर्दशा पर केंद्रित यह उपन्यास गायों की महिमा का बखान तो करता ही है लेकिन वह गौ माफ़िया पर भी प्रहार करता है. इस उपन्यास को पढ़कर फैज़खान नामक मुस्लिम युवक इतना प्रभावित हुआ कि उसने अपनी सरकारी नौकरी का मोह त्याग कर अब देश भर में घूम-घूम कर गौ कथा कह रहा है. वह गर्व से इस बात को बताता है कि मुझे 'एक गाय की आत्मकथा' पढ़कर प्रेरणा मिली. किसी भी लेखक के जीवन का यह सुखद अध्याय हो सकता है कि उसकी कृति किसी के जीवन में इतना परिवर्तन ले आये. 'एक गाय की आत्मकथा' ने मुझे बहुत संतोष प्रदान किया, दूसरा संतोष इस बात का भी है कि यहां आज मेरे साहित्य पर बारह छात्र पीएच.डी. उपाधि के लिए शोधकार्य कर रहे हैं. मैं ख़ुद पीएच. डी. करना चाहता था लेकिन कर नहीं पाया. अब जब लोग मेरे साहित्य पर शोध कर रहे हैं तब एक दिन पिताजी ने कहा था किं तुम पीएच. डी. नहीं कर सके तो क्या हुआ, अब तुम्हारे साहित्य पर लोग पीएच. डी. कर रहे हैं. पिता का आशीर्वाद पाकर मैं प्रसन्न हुआ लेकिन सच कहूं फूल कर कुप्पा आज भी नहीं हूं. मुझे लगता है कि सृजन पथ पर निरंतर चलते रहना ही महत्वपूर्ण है. असली बात यह है कि मैं ईमानदार और बेहतर मनुष्य बना रहूं, और जैसा लिखता हूं, वैसा दिखता भी रहूं. मैं उन लोगों में बिल्कुल शुमार नहीं होना चाहता, जो अपनी रचना में तो ईमानदार हैं लेकिन जीवन में भयंकर बेईमान. मैं अगर खादी की बात करता हूं, गांधी की बात करता हूं, तो मैं खादी पहनता भी हूं. अगर मैं शराब या मांसाहार का विरोध करता हूं तो जीवन में भी उससे परहेज भी करता हूं. मैंने देखा है कि अनेक लेखक लिखते कुछ हैं, जीते कुछ हैं. मैं ऐसा लेखक नहीं बनना चाहता. आज भी कोशिश करता हूं कि लेखक होने से पहले ठीक-ठाक मनुष्य बन सकूं. कितना बन सका हूं, यह मैं नहीं जानता लेकिन उस दिशा में सक्रिय ज़रूर हूं. विनम्रता के साथ कहना चाहता हूं कि साहित्य सृजन मेरे लिए अपनी छवि चमकाने का साधन नहीं है, वरन यह जीवन जीने का उपक्रम है. मैं अपनी हर रचना लोकमंगल के भाव से सही लिखता हूं. ऐसा कहकर मैं अपने बड़प्पन का इजहार नहीं कर रहा, वरन उस परंपरा के अनुगमन की बात कर रहा हूं जिसमें कहा गया है कि लेखन स्वांत सुखाय भले होता है लेकिन उसका मूल लक्ष्य लोक कल्याण ही होता है. उसी दिशा में प्रतिबद्ध हूं. साहित्य के विद्यार्थी के रूप में आज भी कुछ बेहतर लिखते रहने की कोशिश में लगा हूं. और उम्मीद करता हूं आने वाले समय में शायद मेरा सर्वश्रेष्ठ मेरे सामने उपस्थित हो जाये. बस उसी दिन की आस में इस नाचीज़ की क़लम अनवरत ज़ारी है. जीवन के साठवें वसंत में प्रवेश करते हुए मैं अपने सभी शुभचिंतकों से यही निवेदन करूंगा कि वे मुझे आशीर्वाद दें कि मैं लेखन को साधना मानकर गतिशील रहूं.

अंत में अपना एक मुक्तक प्रस्तुत कर विदा लेता हूं कि —

सर्जन का पंथ है लंबा अभी तो दूर जाना है,
रुके ना पैर मेरे बस यही संकल्प ठाना है.
बहुत सी मुश्किलें भी पेश आयेंगी मगर साथी,
भुजाओं में है कितना बल इसे ही आजमाना है.

संपादक, सद्भावना दर्पण
२८ प्रथम तल, एकात्म परिसर,
रजबंधा मैदान,रायपुर (छ. ग.) ४९२००१.
मो. : ०९४२५२१२७२०.
ईमेल : girishpankaj1@gmail.com

अलास्का प्रवास की कुछ झलकियां...

चुटकी में
बड़ौदा कृषि गोल्ड लोन

- 15 मिनट में लोन
- कम से कम ब्याज दर
- कोई शुल्क नहीं
- बैंक ऑफ़ बड़ौदा (सरकारी बैंक) का भरोसा

बड़ौदा कृषि गोल्ड लोन

टोल फ्री नं. पर कॉल करें | 1800 22 33 44
सुबह 6 से रात 10 बजे तक | 1800 102 44 55
वॅब चैट – 24x7
www.bankofbaroda.co.in
हमें यहाँ फ़ॉलो करें

बैंक ऑफ़ बड़ौदा
Bank of Baroda
भारत का अंतर्राष्ट्रीय बैंक

आर. एन. आई. पंजीकरण संख्या :३५७६४/ ७९

संपर्क : ए-१०, बसेरा, ऑफ दिन-क्वारी रोड, देवनार, मुंबई-४०० ०८८.

मंजुश्री द्वारा संपादित व युनिटी प्रिंटिंग प्रेस, ९, रेतीवाला इंडस्ट्रीयल इस्टेट, भायखला, मुंबई – ४०० ०२७. में मुद्रित.
टाईप सेटर्स : वन अप प्रिंटर्स, १२ वां रास्ता, द्वारका कुंज, चेंबूर, मुंबई – ४०० ०७१. फोन : २५५१५५४१